चन्दामामा
नवम्बर १९८४
2
RS

पुरस्कार जीतिए
कॅमल
पहला इनाम (१) रु. १५/-
दूसरा इनाम (२) रु. १०/-
तीसरा इनाम (१०) रु. ५/-
१० प्रमाणपत्र

इस प्रतियोगिता में १२ वर्ष की उम्र तक के बच्चे ही भाग ले सकते हैं. ऊपर दिये हुए चित्र में पूरे तौर से कॅमल कलर्स रंग भरिए और उसे निम्नलिखित पते पर भेज दीजिये :

चंदामामा, पो. बॉ. नं. ११५०१, नरिमन पाइंट पोस्ट ऑफ़िस, बम्बई ४०० ०२१.

जजों का निर्णय अंतिम और सभी के लिए मान्य होगा. इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार नहीं किया जायेगा.

कृपया कूपन केवल अंग्रेजी में भरिए.

Name: .... **Age:** ....

Address: ....

....

प्रवेशिकाएँ 30-11-1984 से पहले पहले भेजी जायें.

CONTEST NO39

Vision/CPL 84088 HIN

यहाँ से काटिए ..... बिन्दुओं पर से काटिए

हमारा महान देश !
हमारी महान संस्कृति !

भारत एक विशाल देश है, इसकी भौगोलिक सीमाओं पर जहाँ एक ओर गगनचुम्बी हिमालय के उत्तुंग शिखर स्थित हैं, वहाँ दूसरी ओर लहराते हुए सागर की उच्छृंखल तरंगें तट से टकराती हैं। हिमालय उत्तर में स्थित है तो मीनाक्षी मन्दिर दक्षिण में; अजन्ता-एलोरा की कलात्मक गुफ़ाएँ पश्चिम में हैं तो कलकत्ता का व्यापारिक केंद्र पूर्व में। परन्तु क्या यह सब उन प्रदेशों की ही बपौती हैं ? क्या भौगोलिक स्थिति उन्हें देश के अन्य भागों से अलग-थलग करने की सामर्थ्य रखती है ?

देश की विभिन्न नदियाँ एक कोने से बहना आरम्भ करती हैं और अनेक भागों को जल-प्लावित करती हुई अपने गंतव्य पर पहुँचती हैं। क्या उनकी उर्वरा-शक्ति पर उसी प्रान्त के निवासियों का अधिकार है ? क्या गंगा उत्तराखंड की ही धरोहर है ? क्या कृष्णा, कावेरी, नर्मदा, ताप्ती कहती हैं कि उनको एक दूसरे से मत मिलाओ ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर केवल नकारात्मक ही हो सकता है। जो प्राकृतिक धरोहर उत्तर में स्थित है उसपर दूसरी दिशाओं में रहने वाले लोगों का समान अधिकार है। इसी भाँति अन्य स्थलों की पूँजी केवल उनकी ही नहीं परन्तु सबकी है। विभिन्न स्थलों पर स्थित देश की महान सम्पदा पर सब भारत-वासियों का समान अधिकार है। ऐसा इसलिए है कि भाग अलग हो सकते हैं, धर्म अलग हो सकते हैं, सामाजिक रीति-रिवाज़ अलग हो सकते हैं, पर यह सब एक ही शरीर के विभिन्न अंग हैं—और वह शरीर है भारत !

हमारा धर्म है भारत के इस अभिन्न एक-रूप को सुदृढ़ बनाना और भिन्न-भिन्न रंग-रूप के मोतियों की इस माला को अपने कंठ में धारण करना। इसी में छिपा है हमारा गौरव, देश का हित, भारतीय संस्कृति का विकास ! आओ, दृढ़ निश्चय के साथ हम सब इस पुनीत कार्य में जुट जाएँ !

अमर वाणी

महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।
लभ्यतेऽपि तत्कृपयेव ॥ —नारद भक्ति सूत्र

[साधुओं की संगति प्राप्त करना कठिन है क्योंकि वे पहुँच से दूर हैं परन्तु उनकी कृपा अपने फल में कभी नहीं चूकती। ईश्वर की कृपा से ही व्यक्ति उन्हें पा सकता है।]

चन्दामामा

संस्थापकः 'चक्रपाणी' संचालकः नागिरेड्डी

सूर्य उगता है, पर उसके मन में क्या कभी यह विचार आता है कि अब मैं अँधेरा मिटाऊँगा, पंछियों को उड़ने की प्रेरणा दूँगा, लोगों को कर्म करने में प्रवृत्त करूँगा ?

नहीं ! वह तो उगता है, खड़ा रहता है। उसका वह अस्तित्व ही विश्व को गति देता है। परन्तु सूर्य को इस बात का भान नहीं, यह तो उसका सहज कर्म है ! यदि आप उससे कहेंगे, "हे सूर्यदेव ! आपके संसार पर अनन्त उपकार हैं, आपने कितना अँधेरा दूर कर दिया !" तो वह चक्कर में पड़ जायेगा। सम्भवतः कहेगा, "जरा सा अँधेरा लाकर मुझे दिखाओ। यदि मैं उसे दूर कर सका तो कहूँगा कि यह मेरा कर्त्तव्य है।"

पर क्या सूर्य के पास अँधेरा ले जाया सकता है ? वह तो उसके समीप पहुँचने से पहले ही समाप्त हो जाता है ! प्रकृति के इस विहंगम आश्चर्य के लिए सम्भवतः सूर्य कहेगा, "प्रकाश मेरा सहज धर्म है। मेरे पास यदि प्रकाश न होगा तो फिर होगा क्या ? मैं नहीं जानता कि मैं प्रकाश दे रहा हूँ। मेरा होना ही प्रकाश है।"

आओ, सूर्य के इस सहज धर्म एवं नम्र स्वभाव से तुम भी प्रेरणा लो। तुम्हारा कर्त्तव्य तुम्हारे लिए सर्वोपरि है। अपनी नम्रता, कर्त्तव्यपरायणता और सेवा-भावना से अपने चारों ओर के समुदाय में प्रकाश की किरणें बिखेर दो। तुम्हारा अस्तित्व सहज ही सूर्य की भाँति प्रकाशमान हो उठेगा !

वर्षः ३७ नवम्बर, १९८४ अंकः ३

एक प्रतिः२-०० :: वार्षिक चन्दाः २४-००

चन्दामामा विशेष संवाद

न्यायमूर्ति का आत्म-विमर्श

न्यू मेक्सिको के शानूटाफी न्यायालय के प्रधान न्यायमूर्ति एक दिन पाँच मिनट देर से न्यायालय में पहुँचे। इस विलम्ब के लिए उन्होंने स्वयं अपने ऊपर पचास डालर जुर्माना किया ।

क्या जल कन्याएँ हैं ?

न्यू गिनी के समुद्र-तटवासियों का विश्वास है कि समुद्र के अन्दर जलकन्याएँ और जलपुरुष हैं। ऊपरी भाग मानव आकृति और निचला भाग मछली की आकृति वाले इन विचित्र प्राणियों को वे लोग 'रि' नाम से पुकारते हैं। उनको प्रत्यक्ष रुप से देखने वाले लोगों के साथ बातचीत करने के बाद वर्जीनिया विश्वविद्यालय के मानवशास्त्रवेत्ता रॉय वाग्नर भी इन प्राणियों के अस्तित्व पर विश्वास करने लगे ।

सौर-शक्ति के द्वारा साइकिल

सौर-शक्ति का उपयोग किस प्रकार और किन रुपों में कर सकते हैं—इस बात को लेकर हमारे देश के वैज्ञानिक अनेक प्रकार के अनुसन्धान और प्रयोग कर रहे हैं। इनके परिणामस्वरूप सौर-शक्ति के द्वारा चलने वाले साइकिल रिक्शे के निर्माण में हमारे वैज्ञानिक सफलता प्राप्त कर चुके हैं ।

क्या आप जानते हैं ?

१. विश्व में सबसे लम्बे द्वार-मार्ग वाला मन्दिर कौन सा है ?

२. हमारे देश में शिला-निर्मित सबसे बड़ी नंदी की मूर्ति कहाँ पर है ?

३. निर्माण के समय एक बालक की मृत्यु का कारण बना हमारे देश का सुप्रसिद्ध मन्दिर कौन सा है ?

४. अरब सागर की रानी के रुप में प्रसिद्ध बन्दरगाह कौन सा है ?

[उत्तर पृष्ठ ६४ पर देखें]

प्रतिभा का प्रदर्शन

प्लवंग राज्य के राजा ललितसेन कवियों के आश्रयदाता के रुप में विख्यात थे, उनके दरबार में पंच रत्न नाम से प्रसिद्ध पांच महाकवि थे। उन कवियों के प्रति राजा ललितसेन के मन में अपार आदर था। इस कारण से उन्होंने यह नियम बनाया था कि उनके दर्शनार्थ आने वाले सभी कवि पहले उन महाकवियों को अपनी कविता के द्वारा प्रसन्न करके तब उनसे मिलने के लिए आऐं ।

एक दिन राजा ललितसेन उद्यान में टहलते हुए अपने मंत्री मुकुल वर्मा से वार्त्तालाप कर रहे थे। उस समय पंचरत्न कवियों के द्वारा भेजे गये दो कवि वहाँ पर आये और राजा की प्रशंसा में कुछ कविताएँ आशु रुप में सुनाई । इन कविताओं को सुनकर राजा को जरा सी भी प्रसन्नता नहीं हुई। उन्हें लगा कि जैसे राज्य में नये उभरते हुए कवि हैं ही नहीं ।

ललितसेन ने उन कवियों की-ओर खीजभरी दृष्टि से देख कर पार्श्व में खड़े सेवकों को आदेश दिया, "सुनो, इन कवियों को कोई पुरस्कार दिलाकर तुरन्त भेज दो ।"

राजभट कवियों को अपने साथ ले गये । तब राजा ने मंत्री से कहा, "मंत्री महोदय, इन कवियों की कविताएं सुनने के बाद मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे राज्य में कविता का स्तर गिर गया है ।"

राजा की बातें सुनकर मंत्री मुकुल वर्मा ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल सर हिला कर रह गये ।

राजा ललितसेन थोड़ी देर मौन रहे, फिर बोले, "ऐसा मालूम होता है कि कलम धारण करने वाला प्रत्येक व्यक्ति कवि है, यह अहंकार कवियों के अन्दर पैदा होता जा रहा है। मैंने पंचरत्न कवियों को स्पष्ट बताया था कि राज दरबार के योग्य कवियों को ही मेरे पास भेजें।"

"महाराज, यह बात सर्वविदित है, फिर भी

न मालूम पंच रत्न कवि ऐसे लोगों को आपके पास क्यों भेज रहे है ?" मंत्री ने कहा ।

राजा को लगा कि मंत्री के उत्तर में कोई मर्म छिपा हुआ है । वे बोले, "संभवतः पंचरत्न कवियों के मन में इस बात का डर होगा कि यदि वे ऐसे कवियों को मेरे पास न भेजें तो शायद वे लोग यह सोचेंगे कि ये महाकवि उनको राज सत्कार पाने से वंचित कर रहे हैं। यह उनकी निष्पक्ष भावना का उदाहरण है, फिर भी मेरे लिए क्रोध का कारण बन रहा है ।"

इस पर मंत्री मुकुल वर्मा मुस्करा कर बोले, "प्रभु, प्लवंग राज्य में प्रतिभाशाली कवियों की कोई कमी नहीं है । पर वे सब आपके दर्शन करने के लिए आ नहीं पा रहे हैं, बस यही बात है !"

राजा ललितसेन मंत्री का उत्तर सुनकर उनकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए बोले, "ऐसा प्रतीत होता है कि आप पंचरत्न कवियों की ईमानदारी पर शंका कर रहे हैं। क्या आपका यह विचार है कि वे महान कवियों के मेरे यहाँ आने में बाधा डाल रहे हैं ?"

मंत्री ने राजा के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि वे मौन रह गये । उन्होंने सोचा कि इस समय राजा से कुछ भी कहना उचित नहीं होगा । उन्होंने निश्चय किया कि समय आने पर सबूत के साथ राजा के सामने सिद्ध करना होगा कि पंचरत्न कवि जान-बूझकर नीचे स्तर के कवि ही राजा के पास भेज रहे हैं ।

इस घटना के थोड़े दिन बाद विशाल नामक एक कवि ने राजा के दर्शन करके अपने काव्य के कुछ प्रसंगों को राजा को सुनाया ।

राजा उस कवि की प्रतिभा पर मुग्ध होकर बोले, "वास्तव में आप महाकवियों की श्रेणी में स्थान पाने योग्य हैं। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मैं अभी तक आपका परिचय प्राप्त नहीं कर सका था !" यह कह कर राजा मंत्री की ओर मुड़कर बोले, "मंत्री महोदय, देख रहे हैं न ? आपने पहले शायंद शंका की थी कि हमारे पंचरत्न कवि प्रतिभाशाली कवियों को मेरे यहाँ भेजने में बाधा डाल रहे हैं। यदि यह बात सच है तो क्या इस विशाल जैसे प्रतिभाशाली कवि को ऐसी

सरलता से वे मेरे पास आने देते ?"

मंत्री ने विशाल की ओर देखा ।

विशाल ने राजा से निवेदन किया, "प्रभु ! इस बात को कि मैं प्रतिभाशाली कवि हूँ पंचरत्न कवियों से छिपाकर ही मैं आप तक पहुँच सका हूँ। इस विषय में सहायता देने वाले महामंत्री के प्रति मैं अत्यन्त ऋणी हूँ ।"

विशाल की बातें सुनकर राजा ने आश्चर्य के साथ मंत्री की ओर देखा ।

मंत्री विनयपूर्वक बोले, "महाराज, कवियों की प्रतिभा को पहचान कर उचित रुप से उनका सत्कार करने वाले तो आप हैं। ऐसी अवस्था में अपनी सारी प्रतिभा पंचरत्न कवियों के सामने क्यों प्रदर्शित करें, इस बात की शंका हमारे राज्य के अनेक कवियों के अन्दर शायद पैदा नहीं हुई है। उन्हें तो पहले पंच रत्न कवियों के दर्शन करने पड़ते हैं। उनकी प्रतिभा उन लोगों से कहीं अधिक है, इस बात को समझने के बाद पंचरत्न कवि उनको आपके दर्शन कराने से वंचित कर रहे हैं ।"

"ऐसी बात है !" राजा ने अपना विस्मय प्रकट किया ।

मंत्री मुकुल वर्मा विशाल को ओर इशारा करके बोले, "आपने इनको महाकवि के रुप में स्वीकार किया । इनके संदर्भ में जो बात हुई, सुनिये । उससे आपको वास्तविकता का पता चल जायेगा । उसे सुनकर ही आप कुछ निश्चय कीजिए । इधर कुछ दिन पहले विकीर्ण नामक एक कवि ने इनको अपना शिष्य बताकर परिचय कराया । उन्होंने यह भी मुझसे बताया
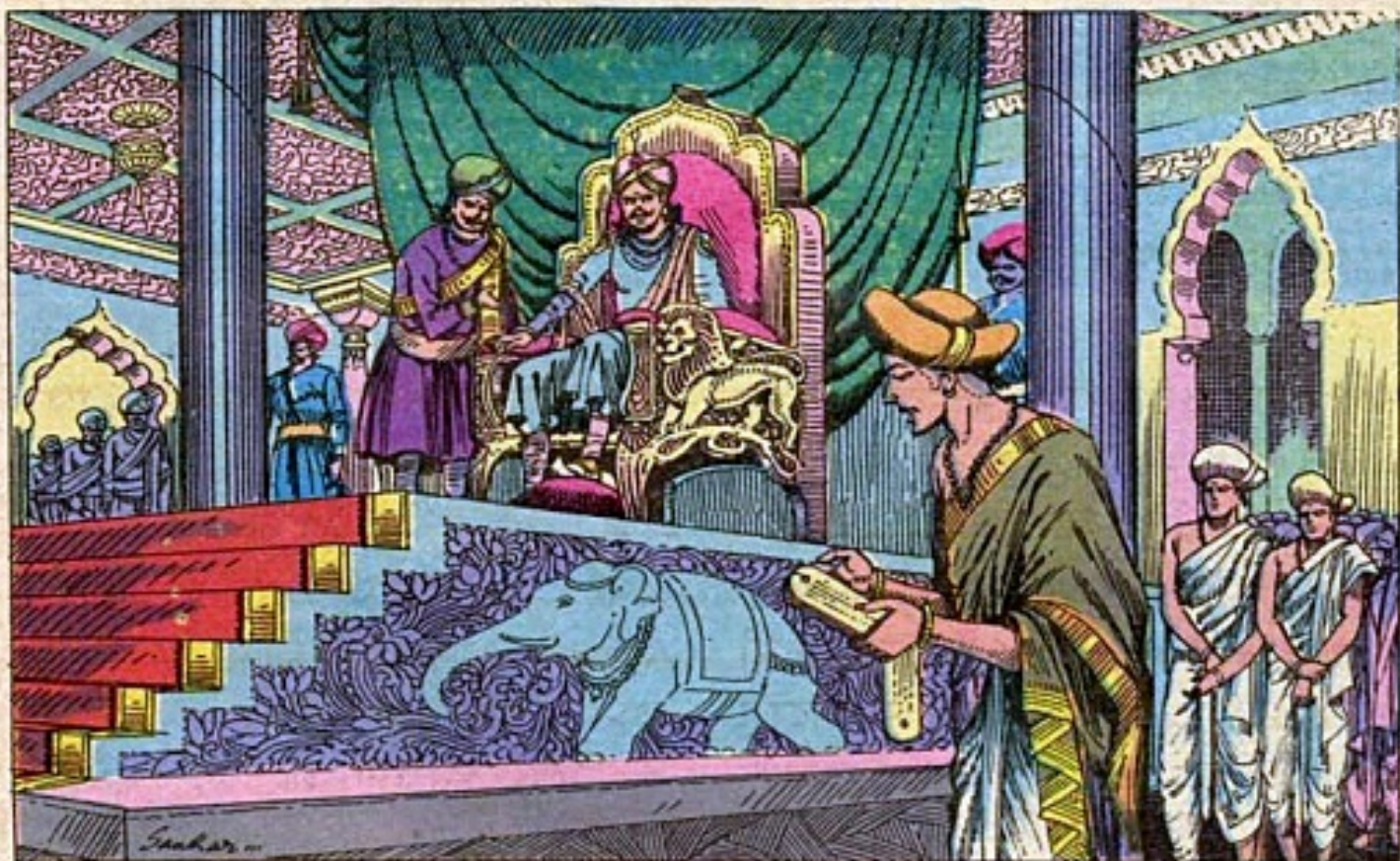
कि ये तो महाराजा के दरबार में स्थाई रुप में रहने योग्य महाकवि हैं। पचरत्न कवियों के पास गये बिना इनको आपके दर्शन कराने का अनुरोध किया। मुझे यह बताना पड़ा कि आपके आदेश के अनुसार ऐसा संभव नहीं होगा।"

"इसका अर्थ है कि आप पंचरत्न कवियों से मिले बिना सीधे मेरे पास आ गये हैं, यही बात है न?" राजा ने विशाल से पूछा।

"महाराजा, मैंने उनके दर्शन तो किये परन्तु अपनी कविता की प्रज्ञा का प्रदर्शन उनके सामने नहीं किया। मैंने इसके पूर्व ही अन्य कवियों के अनुभव के द्वारा यह बात जान ली थी कि ऐसा करने पर आपके दर्शन असंभव हैं। इस कारण से मैंने एक सामान्य कवि के रुप में उनके सामने व्यवहार किया। जो कविताएँ मैंने उन्हें नमूने के तौर पर सुनाईं वे बहुत ही सामान्य स्तर की थीं। फिर क्या था, मुझे तुरन्त आपके दर्शन प्राप्त हो गये," विशाल ने कहा।

राजा क्रोध में आकर बोले, "मैं पंचरत्न कवियों की प्रतिभा को अस्वीकार नहीं कर सकता। वे महान कवि हैं पर वे ईर्ष्यालु प्रतीत होते हैं। इसका अर्थ यही हुआ कि वे इस बात का मुझे विश्वास दिलाना चाहते हैं कि राज्य भर में उनसे बढ़कर प्रतिभाशाली महाकवि कोई और नहीं है। मुझे अब ऐसा कदम उठाना होगा जिससे उभरते हुए कवियों को अपनी प्रतिभा को प्रर्दशित करते का पूरा अवसर मिले।"

"प्रभु! यही काम वे सब कवि कर रहे हैं। इसके पूर्व जब हम उद्यान में टहल रहे थे, तब दो साधारण कवियों को आपके दर्शानार्थ भेजा था। शायद आपको स्मरण होगा!" मंत्री ने कहा।

इस पर राजा ललितसेन को पंचरत्न कवियों के सच्चे रुप का पता चल गया। उन्होंने विशाल को अपना दरबारी कवि नियुक्त किया। इसके बाद उन्होंने इस बात का प्रबन्ध किया कि राज्य के कवि पंचरत्न कवियों के दर्शन किये बिना सीधे उनकी सेवा में पहुँच सकें। इसके पश्चात किसी को भी शिकायत नहीं रही।

[पिंगल अवन्तीनगर पहुँचा। वहाँ पर उसे अपनी माता से अपने भाईयों की दयनीय स्थिति का पता चला। तुरन्त उसने भल्लूककेतू को भेज कर राजा के कोशागार से धन और जादू की थैली के साथ अपने भाईयों को भी घर मंगवाया। इस के बाद उस का आदेश पाकर भल्लूककेतू अपने अनुचरों की सहायता से एक अपूर्व भवन बनाने में लग गया। इस के बाद....]

भल्लूककेतू अपने अनुचरों के साथ संध्या तक अवन्तीनगर को लौट आया। उसके निरीक्षण में नदी के तट पर भवन-निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। हजारों की संख्या में आये हुए पिशाच शिल्पी और मजदूरों ने मिलकर नींव खोद डाली और पत्थर तराश कर एक अद्भुत महल बनाने लगे।

नदी के तट पर होने वाले कोलाहल को अवन्ती नगर के पहरेदारों ने सुना और वहाँ का हाल जानने के लिए नदी के किनारे पहुँचे। इस प्रकार जो भी व्यक्ति वहाँ पर पहुँचा, भल्लूककेतू के अनुचरों ने उस को पकड़ कर महल के निर्माण के काम में लगा दिया। जो राजभट तलवार व भाले लेकर आये और उन का सामना करने के लिए तैयार हो गये, उनको मार-पीट कर सीधा किया।

सूर्योदय तक महल बन कर तैयार हो गया। पिंगल ने अपनी माँ और भाइयों को साथ ले

जाकर उस में प्रवेश किया । बाल-सूर्य की कोमल किरणों की कांति में वह महल इस तरह चमकने लगा, मानो उसे सोने के जल में डुबो दिया गया हो । पिंगल ने भल्लूककेतू के अनुचरों में से पचास लोगों को अपने पहरेदारों के रुप में रख लिया और शेष लोगों को भल्लूक पर्वतों में भेज दिया। भल्लूककेतू स्वयं चहारदीवारी में बिठाये गये लोहे की छड़ों वाले किवाड़ खोल कर उनके पार्श्व में स्थित एक शिला से निर्मित आसन पर पहरेदार की भांति बैठ गया ।

उस समय अवन्तीनगर के राजमहल में हलचल मच गई । पिछली रात को नगर के सुरक्षा-दल का नेता भल्लूककेतू के अनुचरों के द्वारा निर्मित होने वाले अपूर्व महल को देखने गया था, पर उन के द्वारा मार खाकर भाग आया था । उसने मंत्री के पास जाकर फ़रियाद की और सारा हाल उसे सुनाया । मंत्री ने जब सुना कि राक्षस शिल्पी व मजदूर एक अनोखा महल बना रहे हैं, तो उसे इन बातों पर विश्वास न हुआ ।

"सुनो, तुम्हारी बातें विश्वास करने योग्य नहीं हैं । मद्यपान के कारण तुमने कुछ अंट-संट सपने देखे होगे । अब तुम घर जाकर आराम करो । यदि राजा को इस बात का पता चल गया तो तुम्हारे लिए कारागार की सज़ा निश्चित है, समझे !" मंत्री ने कहा ।

"महामंत्री, मेरी बात मानिए । हमारे कुछ सिपाही अभी तक उनके पास में बन्दी हैं । उन पिशाचों के द्वारा मार खाकर मैं अकेला ही नहीं लौटा, मेरे साथ कई और लोग भी भाग आये हैं । यदि मेरी बातों पर आपको विश्वास न हो तो आप किले के बुर्ज पर चढ़कर देख लीजिए । नदी के किनारे पर निर्मित वह महल आप को दिखाई देगा," सुरक्षा दल के नेता ने निवेदन किया ।

मंत्री ने बुर्ज पर चढ़कर देखा । सामने नदी के किनारे सूरज की रोशनी में चकाचौंध करने वाला एक अनोखा महल उसे दीख पड़ा । तब मंत्री के आश्चर्य की कोई सीमा न रही । "ओह, यह कैसा अद्भुत दृश्य है !" यह कहते हुए मंत्री बुर्ज से उतर कर नीचे आया, तभी कोशाधिपति

उस के सामने पहुँच कर चीख उठा, "महामंत्री, हम लुट गये ! कोशागार का सारा धन चुरा लिया गया है। अब वह एक दम खाली है, उस के अन्दर एक कौड़ी तक नहीं है।"

"क्या कोशागार लूट लिया गया है ? पहरेदार कहाँ गये ? उन को तत्काल यहाँ पर बुलाओ," मंत्री ने क्रोध के मारे कांपते हुए कहा।

"महामंत्री जी ! इसमें पहरेदारों का कोई दोष नहीं है। कोशागार के द्वार पहले जैसे बन्द हैं। उनके ताले भी नहीं तोड़े गये हैं। यह सब कुछ माया या जादू जैसा लगता है," कोशागार का अधिपति आसमान की ओर देखते हुए बोला।

"उफ ! यह सब जादू है ? माया है ?" यह कह कर कोशाधिपति की ओर क्रोध भरी दृष्टि दौड़ा कर हुंकार उठा, "उस जादू के बदले तुम्हें फांसी की सज़ा भोगनी पड़ेगी, समझे ! चलो, राजा के पास।"

मंत्री तथा कोशागार का अधिपति राजा के समीप पहुँचे ही थे कि इस बीच कारागार का अधिपति दहाड़ें मारते हुए आ पहुँचा और कम्पित स्वर में बोला, "महामंत्री ! गजब हो गया ! बन्दी जीवदत्त और लक्षदत्त अदृश्य हो गये हैं।"

यह समाचार सुनने पर मंत्री का दिमाग चकरा गया। कारागार के अधिकारी की ओर आँखे तरेर कर देखते हुए बोला, "क्या जीवदत्त और लक्षदत्त देवता हैं जो अदृश्य हो गये ? वे कैसे अदृश्य हुए ?"

"उनकी कोठरी में एक सुरंग मार्ग है। मेरा विचार है कि इतना बड़ा सुरंग मानव मात्र नहीं खोद सकते। यह काम किन्हीं देवताओं या राक्षसों का होगा," कारागार के अधिपति ने कहा।

इस पर मंत्री सोच में पड़ गया। नदी के किनारे पर एक ही रात के अन्दर महल का निर्माण-करना, सुरक्षा-दल का बुरी तरह से मार खाना, राजमहल की विचित्र घटनाएँ-ये सब मानव मात्र के कार्य प्रतीत नहीं होते, मंत्री ने ऐसा अनुभव किया। उस ने इस के पूर्व सुन रखा था कि जीवदत्त तथा लक्षदत्त के पिंगल
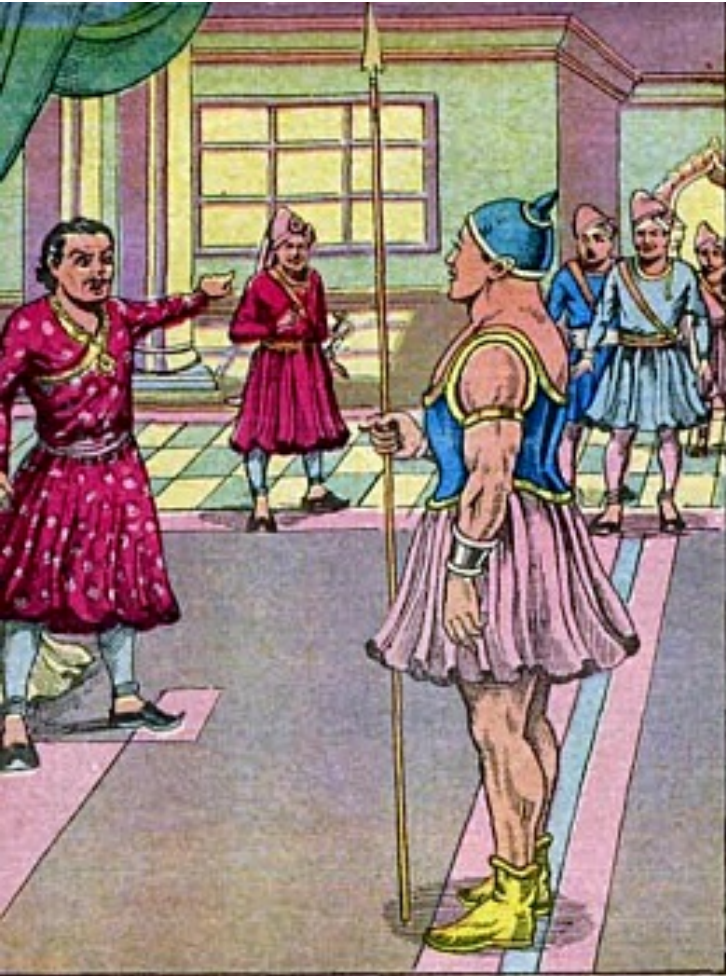
नामक एक भाई है जो मांत्रिक है। इसलिए यह सारा वृतान्त राजा को सुनाना उत्तम होगा, ऐसा मंत्री ने निश्चय किया ।

पर राजा के कमरे के निकट पहुँच कर उन लोगों ने देखा कि वहाँ पर भी कोलाहल छाया हुआ है। "तुम लोग सच बताओ। मेरी अद्भुत थैली कहाँ है ? उसे चुराने वाले को मैं फांसी पर चढ़वा दूँगा," राजा कह रहे थे ।

राजा के सामने राजमहल के रसोई घर के सारे रसोइये हाथ बांध कर खड़े हुए थे ।

मंत्री को देखते ही राजा ने आदेश दिया, "मंत्री महोदय, इन सब को रस्सों से बांध कर हाथियों से कुचलवा दो । इन दुष्टों ने मेरी अद्भुत थैली को चुराया है ।"

"महाराज, इससे भी अधिक कई भयंकर कृत्य हुए हैं।" इन शब्दों के साथ मंत्री ने राजा को सारी घटनाएँ सुनाईं। सारी बातें सुनकर राजा झल्ला उठे और राज-महल के रक्षक को बुला कर बोले, "तुम पचास सिपाहियों को साथ ले जाकर नदी तट के उस महल में रहने वाले सब प्राणियों को बन्दी बना कर यहाँ ले आओ ।"

"महाराजा, सावधानी से सुन लीजिए ।" यह कहकर मंत्री कुछ और सुनाने को हुए, इस बीच राजा खीझ कर बोले, "क्या तुम उस मछुआरे को राज्य दिलाकर उसके यहाँ मंत्री-पद संभालने की सोचते हो ?"

मंत्री कोई उत्तर न दे पाया। वह समझ नहीं सका कि राजा व्यर्थ में क्यों क्रोधित हो रहे थे। उसी समय राजमहल का रक्षक वहाँ पहुँच कर बोला, "महाराज, क्या मैं पिंगल को घोड़े से बांध कर खींच ले आऊँ !"

"चाहे तुम उस को घोड़े से बांध कर खींच ले आओ, या गधे से, मेरी दृष्टि में कोई अन्तर नहीं पड़ता । मुझे तो चाहिए—अद्भुत थैली और कोशागार का धन, समझ गये !" राजा क्रोध से बोले ।

राजमहल का रक्षक हथियारों से लैस पचास सैनिकों को साथ लेकर पिंगल के महल के समीप पहुँचा। चहार दीवारी के पास पड़ी शिला के आसन पर बैठ कर ऊँघने वाले भल्लूककेतु को देखते ही सारे सैनिक घबरा गये और पीछे हटते हुए बोले, "महाशय, यह कोई

राक्षस जैसा लगता है। उस के कान हाथी के कान जैसे हैं और जबड़े जंगल के सुअर के जैसे लगते हैं।''

राजमहल का रक्षक बोला, ''अरे अबोध, डरो मत। यह कोई हमको डराने के लिए बहुरुपिये का वेश धारण कर बैठा है।'' यों कह कर वह घोड़े को हांक कर भल्लूककेतू के समीप पहुँचा और अपने भाले को उसके कंधे से चुभोकर बोला, ''अरे घमण्डी के बच्चे ! आँखे खोलो। यहाँ पर राजमहल के सुरक्षा अधिपति आये आये हुए हैं।''

भल्लूककेतू ने आँखें खोल कर देखा और अपने कंधे पर टिके हुए भाले को खींच कर उस को उलटा करके दोनों पैर पकड़ कर ऊपर उठाया, खूब घुमा कर दूर की नदी में उसको फेंक दिया।

उस दृश्य को देखते ही शेष राजभट ''बापरे, मर गये !'' चिल्लाते हुए वहाँ से भाग खड़े हुए। भल्लूककेतू उनकी ओर दृष्टि दौड़ा कर हँस पड़ा, फिर अपने आसन पर बैठ कर संतुष्टि पूर्वक आँखे बंद कर लीं।

जो राजभट भाग गये थे, वे हाहाकार करते हुए राजा के पास पहुँचे और सारा समाचार उन्हें सुनाया। यह समाचार सुनकर राजा बहुत क्रोध से बोले, ''अरे कमबख्तों ! तुम सब लोग मिल कर जंगली जाति के एक आदमी को बन्दी बनाकर नहीं ला सके ? तुम अपने आप को बहादुर सिपाही समझते हो ? क्या तुम्हारे पास

अस्त्र-शस्त्र नहीं थे या तुम्हारी बाहुओं में शक्ति नहीं थी ? इस कायरतापूर्ण व्यवहार के लिए तो तुम्हें कठोर सज़ा मिलनी चाहिए !'' तब मंत्री आगे बढ़ कर बोला, ''महाराज, आवेश में न आइए ! हमें इस बात का सही पता नहीं है कि वह जंगली जाति का मनुष्य है या राक्षस ! इसलिए उस प्राणी की अपूर्व शक्ति के पीछे कोई भी रहस्य हो सकता है। आपसे यह बात छिपी नहीं है कि मछुआरा पिंगल एक मांत्रिक है। इस कारण से वह कुछ भी कर पाने में समर्थ हो सकता है।''

''चाहे वह जैसा ही मांत्रिक क्यों न हो, क्या वह अवन्तीनगर के राजा का अपमान करेगा ? मैं उसका सर कटवा कर किले के तोरण द्वार पर

लटकवा दूँगा।" यह कह कर तालियाँ बजाते हुए राजा ने पुकारा, "सेनापति ! यहाँ आओ।"

"जो आज्ञा, महाराज !" यह कहकर सेनापति राजा के सामने आ खड़ा हुआ।

इस पर राजा ने उसको आदेश दिया कि पिंगल के द्वारा बनवाये गये महल को मटियामेट करके वहाँ के सभी लोगों को बन्दी बनाकर उन के सामने उपस्थित करे।

राजा का आदेश पाने पर सेनापति का उत्साह उमड़ पड़ा। इधर कुछ वर्षों से युद्ध न होने के कारण उस की भुजाएँ लड़ने को फड़क रही थीं। इस लिए उसने सोचा कि नदी तट पर निर्मित महल को मटियामेट करके वहाँ के लोगों को जी भर कर सताया जा सकता है।

वह सोचने लगा, "पिंगल के यहाँ भी छोटी सेना होती तो क्या ही अच्छा होता ! उसके साथ मुष्टी-युद्ध और मल्ल-युद्ध किया जा सकता था।"

इस के बाद दो सौ अश्विकों तथा तीन सौ पैदल सिपाहियों को साथ लेकर सेनापति दर्प के साथ निकल पड़ा और शीघ्र ही पिंगल के महल के निकट पहुँचा। उधर भल्लूककेतू निद्रा का अभिनय करते हुए अर्धनिमीलित नेत्रों से सेनापति के आगमन को देखता रहा। सेनापति चहार दीवारी के समीप जाकर अपने भाले को भल्लूककेतू की ओर निशाना करके गरज उठा, "अरे जंगली मूर्ख ! तुम्हारा मालिक कहाँ है ? खड़े हो जाओ।"

भल्लूककेतू उसी समय नींद से जगने जैसा अभिनय करके उठ खड़ा हुआ। सेनापति की ओर देख कर बोला, "अरे किस कमबख्त मानव ने मुझे पुकारा ? क्या तुम्हीं ने तो नहीं ?"

यह प्रश्न सुनकर सेनापति ने उग्र रुप धारण कर लिया और अपने भाले को भल्लूककेतू की छाती का निशाना बना कर अपने घोड़े को छलांग लगवाई। भाले की नोक भल्लूककेतू की छाती में घंसने वाली थी, तब वह बगल की ओर हट गया और घोड़े पर सवार सेनापति को अपने दोनों हाथों से कस कर पकड़ लिया, तब शिला-आसन पर डाल कर उसके ऊपर बैठ

गया ।

इसके के बाद भल्लूककेतू ने तालियाँ बजा कर अपने अनुचरों को निकट आने का संकेत किया । तत्काल उस के अनुचर विविध प्रकार के पत्थरों के आयुध धारण कर वहाँ आ पहुँचे । भल्लूककेतू उन को भागने वाले सैनिकों को दिखा कर बोला, "उन घमण्डियों का पीछा करके उनकी हड्डी-पसली तोड़ दो ।"

भल्लूककेतू के अनुचरों ने राजा के अश्वारोही सैनिक तथा पैदल सेना पर हमला करके उनको अपने शिला-निर्मित अस्त्रों से पीटना शुरु किया । इस पर सारे अनुचर अपनी जान बचा कर जिधर हो सका भागने लगे । उस दृश्य को देख महल की दूसरी मंजिल पर खड़े हुए पिंगल, उसकी माँ और पिंगल के अग्रज खिलखिला कर हंस पड़े ।

जो सैनिक राक्षसों की पकड़ से बच गये थे, वे जाकर सारा हाल राजा को सुनाने लगे । अब राजा को पता चल गया कि पिंगल एक साधारण मछुआरा नहीं; वे अपने क्रोध पर अंकुश रख कर मंत्री से बोले, "मंत्री महोदय, यह हमारे लिए अत्यन्त अपमान की बात है । मैं अपने प्राणों का मोह छोड़ कर पिंगल के साथ स्वयं लड़ूँगा । यदि युद्ध में मैं वीर-गति को प्राप्त हो जाऊँ तो मेरी इकलौती बेटी वकुला की सब प्रकार से रक्षा करके योग्य वर के साथ उसका विवाह करना होगा ।"

मंत्री पल भर सोच कर बोला, "महाराज, आप मुझ पर क्रोधित हुए बिना शान्त चित होकर मेरे निवेदन पर ध्यान देने की कृपा करें ।"

"बताओ, क्या है ?" राजा ने पूछा

"पिंगल युवक है, अविवाहित है । उसके जान-पहचान के लोगों द्वारा मुझे यह समाचार मिला है कि सुन्दरता में वह किसी राजकुमार से कम नहीं । वैभव, साहस और पराक्रम में भी वह बेजोड़ है । इसलिए राजकुंमारी के साथ उसका विवाह संपन्न किया जाये, तो आप और हमारा राज्य उपद्रवों के चक्कर से बच सकते हैं ।"

यह परामर्श सुनकर राजा को बड़ा क्रोध आया । वे बोले, "क्या तुम्हारे मस्तिष्क में

विकार उत्पन्न हो गया है जो ऐसा परामर्श दे रहे हो ? क्या अपने शत्रु के साथ पुत्री का विवाह कर दूँ ? क्या राज्य को बचाने के लिए अपनी पुत्री की भेंट चढ़ा दूं ? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता !"

मंत्री ने राजा को समझाया, "राजन, आपका ऐसा सोचना ठीक हो सकता है, परन्तु अन्तिम निर्णय करने से पहले आप मेरी पूरी बात सुनकर उस पर गौर से विचार कर लीजिए। राजनीति में बहुत कुछ ऊँचा-नीचा सोचना पड़ता है, देखना पड़ता है। जो आज शत्रु दिखाई देता है वही कल शुभचिन्तक भी बन सकता है। और फिर पिंगल में बुराई ही क्या है ? यदि वह विभिन्न परिस्थितियों में आपके सम्पर्क में आया होता तो क्या आपको उसमें कोई दुर्गुण दिखाई देता ? क्या उस समय वह राजकुमारी के उपयुक्त वर नहीं माना जाता ? इसलिये मेरा निवेदन है कि शान्त मन से सोच-विचार करके ही निर्णय लीजिए। यदि आपको मेरा परामर्श उचित लगे तो राजकुमारी का विवाह पिंगल से ही करने का निश्चय कीजिए। इससे न तो आपको और न राजकुमारी को कोई पश्चाताप होगा। मेरे विचार में इससे उत्तम उपाय और कोई नहीं हो सकता है।"

राजा ने थोड़ी देर विचार करके कहा, "तुम्हारा प्रस्ताव मुझे स्वीकार है।"

इसके बाद मंत्री राज परिवार के अनुकूल रिवाज के साथ पिंगल से मिला और राजा की इच्छा उसके सामने प्रकट की। पिंगल ने इसके पूर्व ही राजकुमारी की सुन्दरता के बारे में सुन रखा था, इसलिए झट से उसने मंत्री के प्रस्ताव को मान लिया।

उस के चन्द दिन बाद राजकुमारी बकुला का विवाह पिंगल के साथ वैभव पूर्वक संपन्न हुआ। महा मांत्रिक पद्मपाद ने उस उत्सव में भाग लेकर वर-वधु को आशीर्वाद दिया। कुछ वर्ष बाद राजा का देहान्त हुआ। इसपर पिंगल अवन्तीनगर का राजा बना और जनता के सुख-दुखों का ध्यान रखते हुए न्याय-पूर्वक शासन करने लगा। (समाप्त)
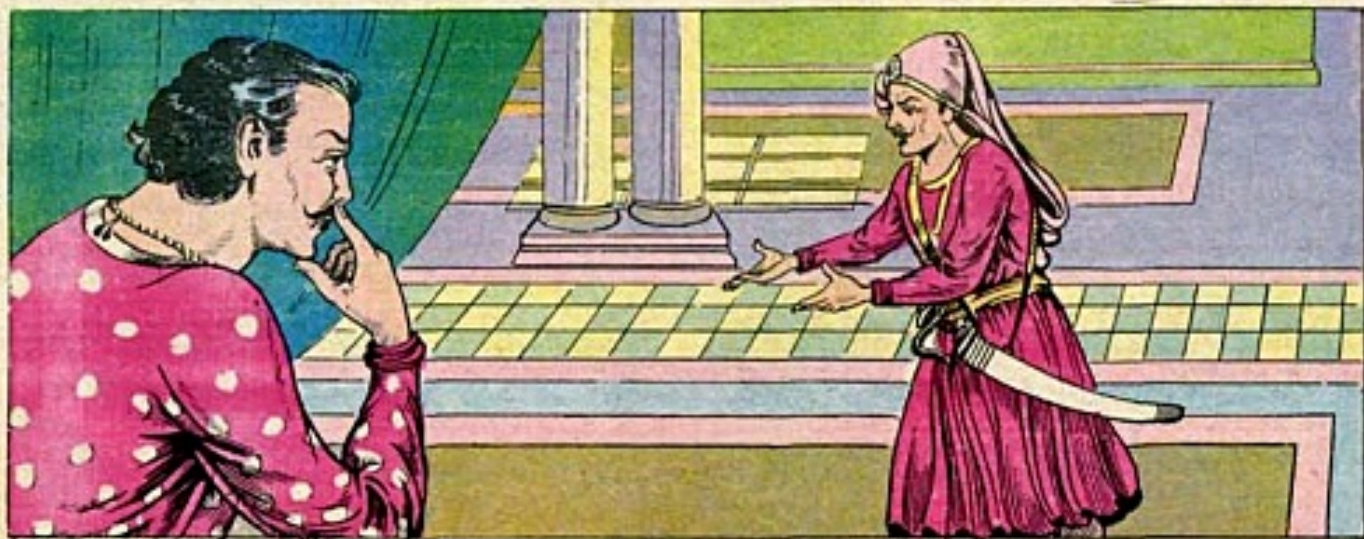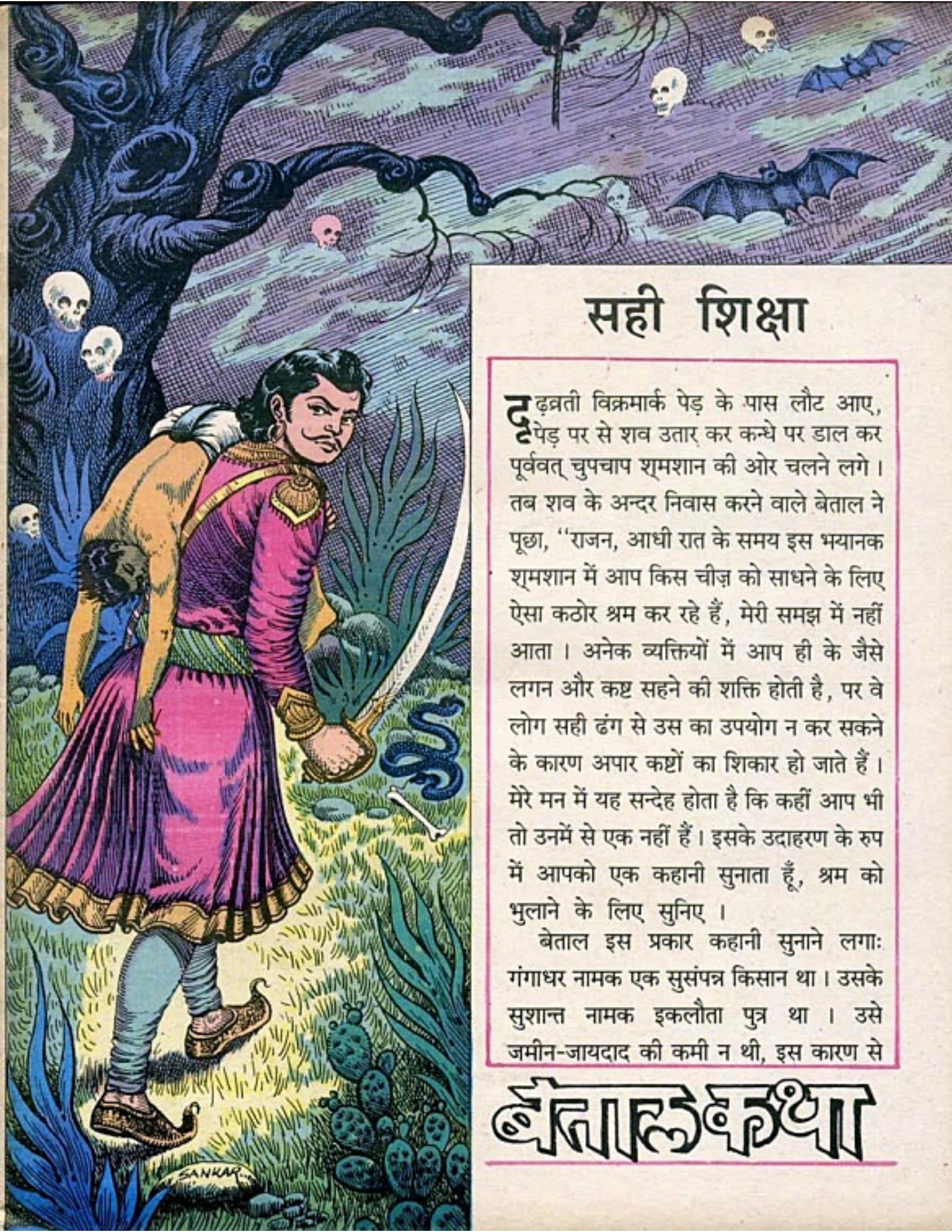
सही शिक्षा

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आए, पेड़ पर से शव उतार कर कन्धे पर डाल कर पूर्ववत् चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव के अन्दर निवास करने वाले बेताल ने पूछा, "राजन, आधी रात के समय इस भयानक श्मशान में आप किस चीज़ को साधने के लिए ऐसा कठोर श्रम कर रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आता। अनेक व्यक्तियों में आप ही के जैसे लगन और कष्ट सहने की शक्ति होती है, पर वे लोग सही ढंग से उस का उपयोग न कर सकने के कारण अपार कष्टों का शिकार हो जाते हैं। मेरे मन में यह सन्देह होता है कि कहीं आप भी तो उनमें से एक नहीं हैं। इसके उदाहरण के रुप में आपको एक कहानी सुनाता हूँ, श्रम को भुलाने के लिए सुनिए।

बेताल इस प्रकार कहानी सुनाने लगाः गंगाधर नामक एक सुसंपन्न किसान था। उसके सुशान्त नामक इकलौता पुत्र था। उसे जमीन-जायदाद की कमी न थी, इस कारण से

बेताल कथा

वह अपने पुत्र को शिक्षा दिलवा कर सारी विद्याओं में प्रवीण बना देना चाहता था। लेकिन जब सुशान्त पाँच साल का था, तब गंगाधर अचानक किसी बीमारी का शिकार हुआ और दिन प्रतिदिन कमज़ोर होता गया। फिर उसका स्वास्थ्य कई साल तक नहीं सुधरा। इस कारण से गंगाधर ने सुशान्त को अपने पास घर पर रख कर घर के काम-काज, खेतीबाड़ी वगैरह का अच्छा अभ्यास कराया। पन्द्रह साल की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते सारे काम वह खुद देखने लगा।

सुशान्त के मन में शिक्षा के प्रति बड़ी अभिरुची थी। उस गाँव का शिक्षक ज्यादा शिक्षित नहीं था। वह अपने शिष्यों को अक्षर ज्ञान मात्र करा सकता था। सुशान्त बहुत ही कुशाग्र बुद्धि वाला था फिर भी उसी गुरु के यहाँ सुशान्त ने अन्य शिष्यों से बढ़कर शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद उसी गाँव में शंकर नामक कवि के यहाँ काव्य पाठ सीखा। इससे सुशान्त को अधिक पढ़ने का अवसर न मिला।

सुशान्त स्वभाव से अत्यन्त जिज्ञासु था। प्रकृति के प्रत्येक विषय का समग्र रुप में परिशीलन करके उसके कारणों का अन्वेषण किया करता था। इसी की प्रतिभा के द्वारा उसने खेतीबाड़ी में अनेक नई पद्धतियों का विकास करवाया। गाँव के सब लोग उसकी सूक्ष्म बुद्धि की बहुत तारीफ किया करते थे। जिस किसी के घर कोई समस्या पैदा हो जाती तो उसको छोटा समझकर संदेह किये बिना उसकी सलाह लिया करते थे, और वह लोगों को सन्तोषजनक उत्तर दिया करता था। उसे दूसरों की समस्याओं का समाधान करने में कोई परेशानी नहीं होती थी, उल्टे प्रसन्नता का ही अनुभव होता था।

सुशान्त सदा अपने पिता की बीमारी के बारे में सोचा करता था। गाँव के वैद्य से मिलकर कौन सी बीमारी किन कारणों से होती है और उन बीमारियों के लिए दवाएँ कैसे असर करती हैं, आदि का विवरण समझ लेता था, पर उसके पिता की बीमारी का निदान गाँव का वैद्य नहीं कर पाया।

सुशान्त ने जब शरीर शास्त्र के सम्बन्ध में थोड़ी सी जानकारी हासिल की, तब उसे यह

समझ में आ गया कि उसके पिता की बीमारी कैसे दूर की जा सकती है। वह अपने पिता को बताये बिना माता से कहकर कुछ विशेष प्रकार के व्यंजन उसके लिए बनवाया करता था। उनके प्रभाव से गंगाधर का रोग तीन महीनों के अन्दर सुधर गया। तब सुशान्त ने उस इलाज का विवरण पिता को सुनाया। गंगाधर अचरज में पड़ गया और उसने यह बात गाँव के वैद्य को बताई।

वैद्य चकित रह गया, फिर बोला, "राजधानी में मेरा एक रिश्तेदार चार धनवानों का इलाज कर रहा है। वह वैद्य शास्त्र में पारंगत है। वह तुम्हारी बीमारी का निदान न कर पाया। तुम्हारे पुत्र की बुद्धि असाधारण है। तुम जानते ही, हीरे को सान पर धरने पर उसकी चमक और शोभा निखर उठती है। परन्तु हीरे को यदि तराशा न जाये तो उसकी चमक अधूरी ही रह जाती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की उभरती हुई प्रतिभा को भी चमकाने के लिये यह आवश्यक है कि उसे उचित अवसर प्रदान किया जाये। तुम अपने पुत्र को किसी गुरुकुल में शिक्षा के लिए भेजो।"

गंगाधर के मन में भी अपने पुत्र को पढ़ाने की तीव्र इच्छा थी। इसलिए वह अपने पुत्र को साथ लेकर राजधानी के लिए चल पड़ा। उसको पता चला कि राजधानी में दिलीप नामक गुरु समस्त शास्त्रों में पारंगत विद्वान है।

रास्ते में गंगाधर एक गाँव में रुक गया। वहाँ पर उसका एक रिश्तेदार निवास करता था। उसने सुशान्त की परीक्षा करके बताया, "तुम्हारा बेटा महान कवि बनेगा। मेरा पुत्र चन्द्रभानु दिलीप के यहां कविता का अभ्यास कर रहा है। तुम उसके पास पहुँचकर अपना हाल सुनाओ। वह जरूर तुम्हारी मदद करेगा, क्योंकि दिलीप हर किसी को अपना शिष्य नहीं बनाता। वह उन्हीं लोगों को अपना शिष्य बनाता है जिनकी परीक्षा लेकर उसके शिष्य सिफारिश करते हैं।

गंगाधर वहाँ से चल कर दूसरे गाँव में पहुँचा। वहाँ पर वह उस गाँव के मुखिये के घर ठहर गया। गाँव का मुखिया सुशान्त की विनम्रता देखकर मुग्ध हुआ और उससे कई

सवाल किये ।

इसके बाद उसने गंगाधर को सलाह दी, "सुनो भाई, तुम सुशान्त को युद्ध विद्याएँ सिखला दो। किसी गुरु के यहाँ गये बिना इसने अनेक व्यायामों का अभ्यास किया है। इसका शारीरिक गठन भी सुन्दर और सुगठित है। इसे युद्ध-विद्याओं को सीखने न तो कोई कठिनाई होगी और न अधिक समय ही लगेगा। राजधानी में दिलीप के यहाँ मेरा छोटा भाई रामभद्र युद्ध-विद्याओं का अभ्यास कर रहा है। तुम लोग उसकी मदद ले लो।"

इसके बाद गंगाधर वहाँ से चल पड़ा पर राजधानी में पहुँचने से पूर्व वह तीन और गाँवो में ठहरा था। वहाँ के लोग सुशान्त की विनयशीलता और प्रखर बुद्धि को देख आश्चर्य में आ गये। कुछ लोगों ने उसको वैद्यविद्या सिखलाने की सलाह दी। कुछ लोगों ने उसे संगीत कला का अभ्यास कराने का सुझाव दिया। कुछ ने उसको शिल्पी बनाने का अनुरोध किया। यह सारी सलाहें एक दूसरी से भिन्न थीं। किस सलाह को माना जाये और किस को नहीं, यह एक कठिन समस्या थी। गंगाधर सबकी सलाहों को सुनकर सर हिला कर मौन रह गया। आखिर पिता-पुत्र राजधानी में पहुँचकर एक सराय में ठहर गए।

गंगाधर ने खूब विचार करके दिलीप से पहले चन्द्रभानु से मिलने का निश्चय कर लिया। चन्द्रभानु वहाँ पर अपने रिश्तेदारों के घर पर रहा करता था। वह रोज शाम को अपने गुरु दिलीप के यहाँ जाता था। इस कारण वह रात
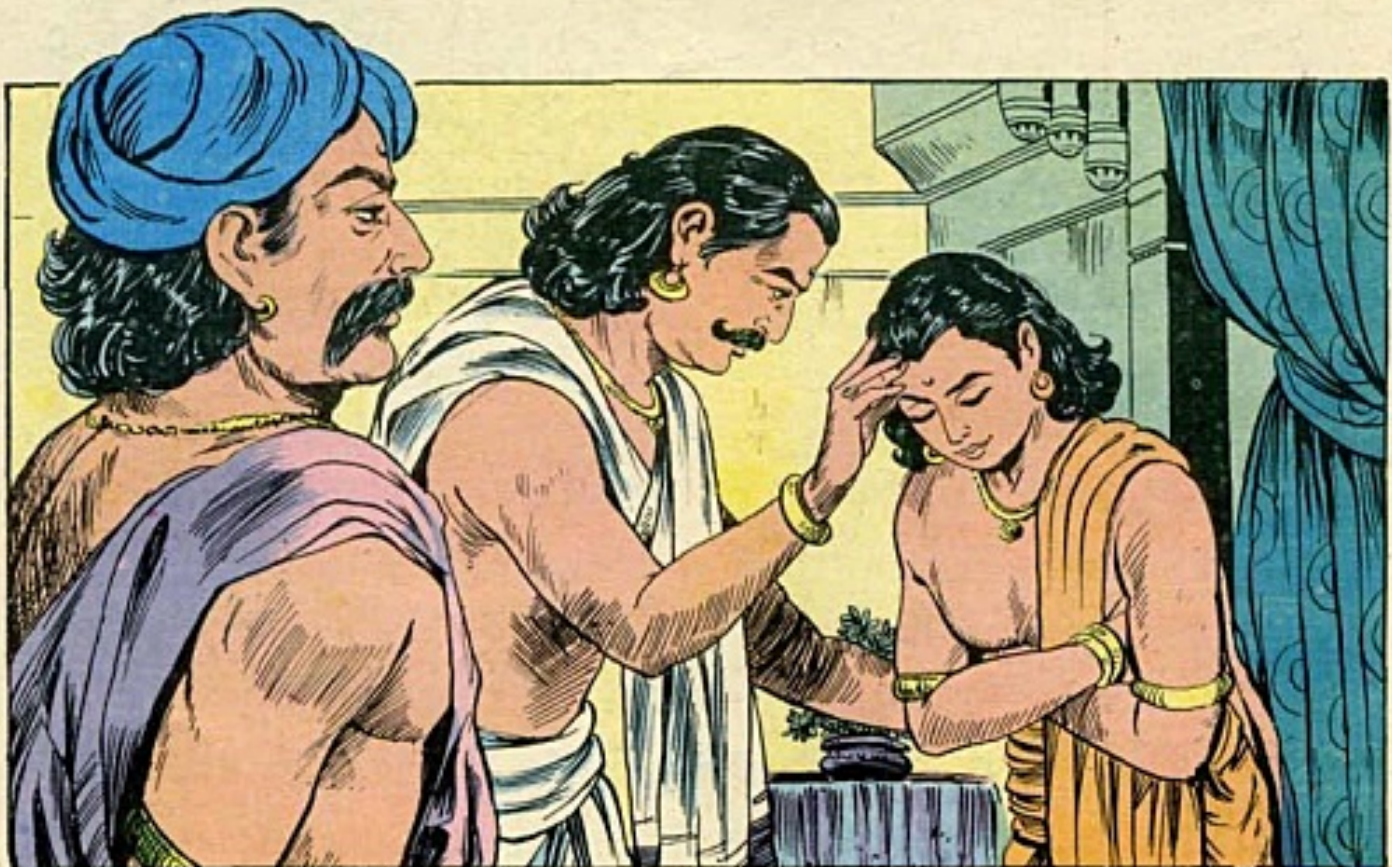
को विलम्ब से घर लौटता था। इसलिए वह देर तक जागता था।

गंगाधर और सुशान्त सवेरे ही चन्द्रभानु के घर पहुँचे। वह तब तक सो रहा था। उस घर की एक औरत ने उसको जबर्दस्ती जगाया।

चन्द्रभानु खीझते हुए गंगाधर और सुशान्त के समीप पहुँचा और उनके आगमन का कारण पूछा। गंगाधर ने अपने आने का कारण बताया।

"क्या आपके पुत्र ने इसके पूर्व किसी गुरु के यहाँ विद्याभ्यास किया है?" चन्द्रभानु ने पूछा।

"नहीं," गंगाधर ने कहा।

"थोड़ा बहुत विद्या का ज्ञान रखने वालों के अतिरिक्त अन्य लोगों को हमारे गुरु नहीं पढ़ाते। आप का सीधे उनके यहाँ पहुँच जाना अहंकार ही माना जाएगा। वे और सभी बातों को सहन कर सकते हैं, पर अहंकार को नहीं," चन्द्रभानु ने समझाया।

"इसीलिए हम तुम्हारी मदद लेने आये हैं। मैं अपने पुत्र को तुम्हारे पास छोड़ जाता हूँ। तुम्हीं इसको अपने गुरु के यहाँ भर्ती करा दो," गंगाधर ने कहा।

चन्द्रभानु ने सुशान्त से कविता संबन्धी कुछ कठिन प्रश्न पूछे। सुशान्त उन के सही उत्तर नहीं दे पाया।

इसपर क्रुद्द होकर चन्द्रभानु ने डांट दिया, "जब तुम इन साधारण प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाते हो, ऐसी स्थिति में तुम्हें दिलीप जैसे गुरु की आवश्यकंता कैसे पड़ी? अधिक आशा उचित
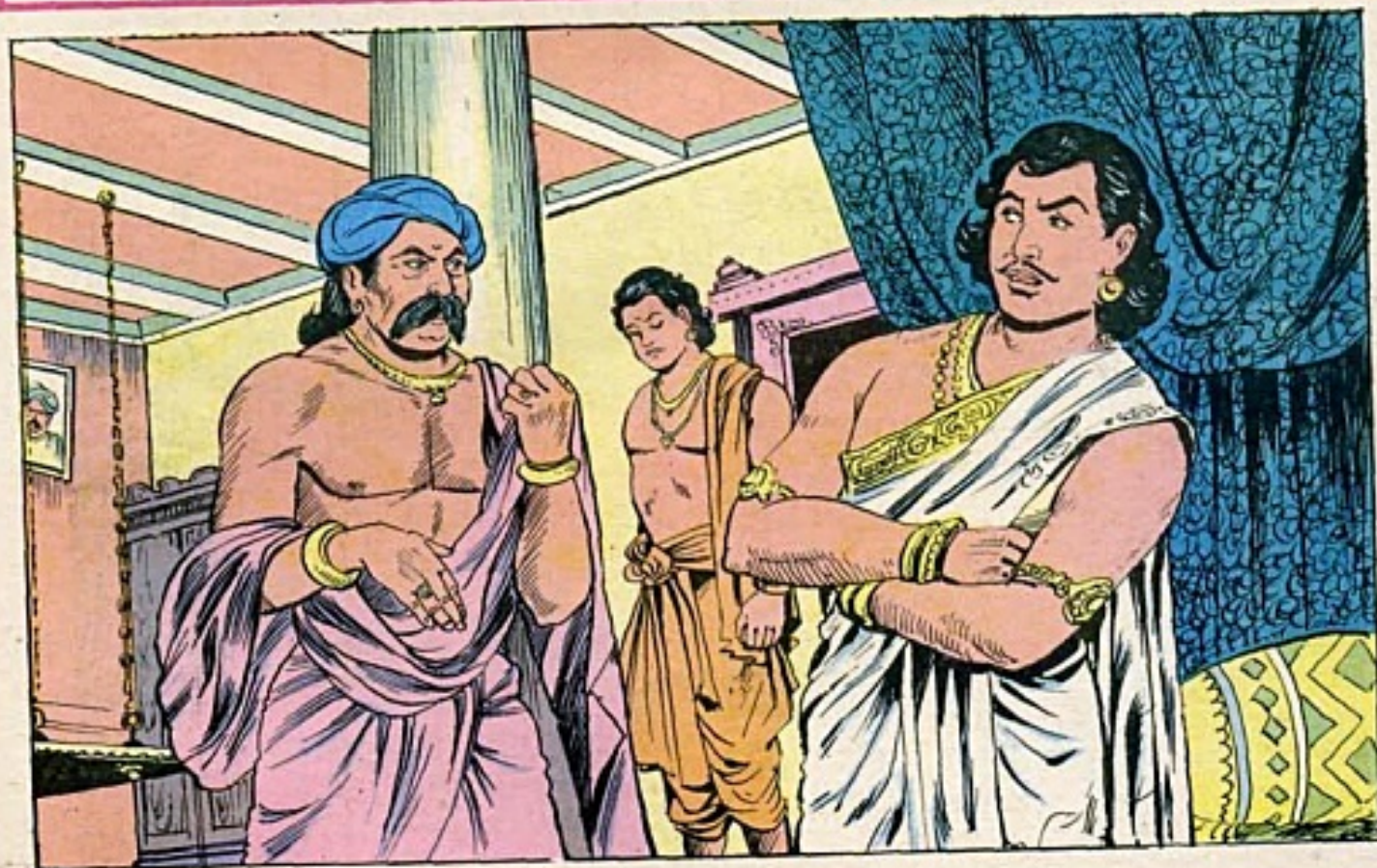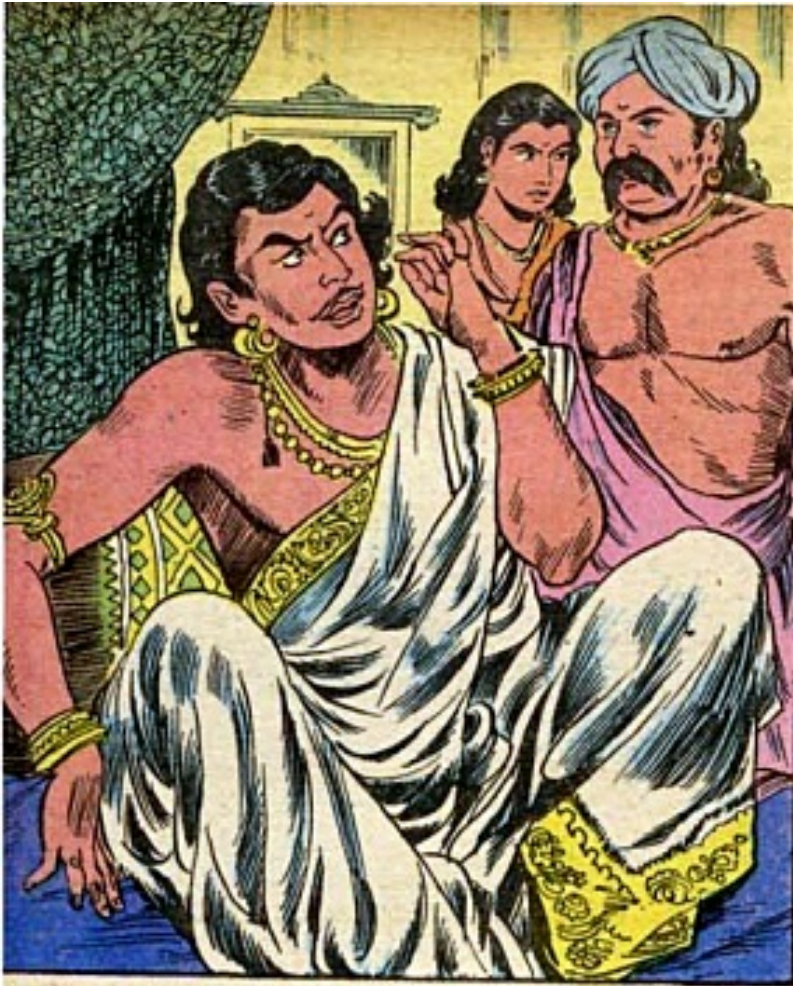
नहीं, यहाँ से चले जाओ ।''

इसके बाद गंगाधर और सुशान्त रामभद्र के घर पहुँचे। रामभद्र उसी समय गुरुकुल जा रहा था। वह बोला, ''हमारे गुरु अन्य सभी बातों को क्षमा कर सकते हैं, मगर विलंब करने को नहीं ।'' यह कहकर रामभद्र वहाँ से चला गया ।

उसी दिन शाम को पिता-पुत्र दोनों फिर रामभद्र के घर पहुँचे ।

रामभद्र ने सुशान्त की ओर परखने वाली दृष्टि से देखकर पूछा, ''तुम्हारे पुत्र ने इसके पूर्व कहीं युद्ध-विद्याओं का अभ्यास किया है ?''

चन्द्रभानु के यहाँ उसने जो जानकारी प्राप्त की थी, उसको दृष्टि में रखकर गंगाधर ने सतर्क हो कर उत्तर दिया, ''हमारे गाँव में ही एक गुरु के यहाँ थोड़ा बहुत अभ्यास किया है ।''

''शिक्षा कोई व्यापार नहीं है कि जब चाहा और जहाँ चाहा वहीं कर लिया। शिक्षा के लिए तो एक योजना बनानी पड़ती है, एक गुरु का चुनाब करना पड़ता है। हमारे गुरु उन्हीं लोगों को शिक्षा देते हैं जो उन्हीं के यहाँ अपनी विद्या का आरम्भ करते हैं। किसी गुरु के यहाँ थोड़े दिन विद्याभ्यास करके फिर उस विद्या से सन्तुष्ट न होकर जो लोग हमारे गुरु के पास आते हैं, उनसे वे नाराज़ हो जाते हैं,'' रामभद्र ने कहा।

इसपर गंगाधर ने कहा, ''भाई, मैं अभी झूठ बोला था। चन्द्रभानु नामक दिलीप के एक शिष्य ने हमें जैसी जानकारी दी, उसी को दृष्टि में रखकर मैंने ऐसा कहा ।''

रामभद्र उसका उत्तर सुनकर दर्प के साथ बोला, ''कविता के संदर्भ में यह बात सच हो सकती है क्योंकि कवि दूसरों के आश्रय में जाकर अपना पेट भरते हैं। वे लोग अपने आश्रयदाताओं को खुश करने के लिए एक ही इतिहास या पुराण को परिवर्तित करके लिख डालते हैं। उसमें कोई अधिक परिश्रम नहीं लगता है। पर युद्ध विद्याओं की बात ऐसी नहीं। यह विद्याएँ सीखने के लिए व्यक्ति को बहुत अधिक परिश्रम एवँ कठिन साधना करनी पड़ती है और एक योजना के अनुसार अपनी शिक्षा आगे बढ़ानी होती है। उसी के अनुसार वह यह विद्याएँ सीखता है और उनसे लाभ

उठाता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक नवीन पद्धति होती है। उसके अतिरिक्त युद्ध-विद्याएँ सीखने वाला दूसरों पर निर्भर नहीं रहता।"

"जो बात होनी थी, सो हो गई। अब मेरे बेटे को तुम्हीं को दिलीप के यहाँ भर्ती करा देना होगा," गंगाधर ने अनुरोध किया।

इस पर रामभद्र ने शांत होकर सुशान्त से कुछ प्रश्न किये। उसके बाद उसने कहा, "तुम्हारा पुत्र खेतीबाड़ी के धंधे को छोड़ युद्ध-विद्याओं में सफल नहीं हो सकता। ऐसे कच्चे आदमी की मैं सिफारिश कर दूँ तो हमारे गुरु जी मुझ पर नाराज़ हो कर गुरुकुल से निकाल देंगे।"

गंगाधर हताश होकर वहाँ से चल पड़ा। इसके बाद लगभग सब जगह उसे ऐसे ही जवाब मिले। उसे अब समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे। उसे कोई भी उपाय नहीं सूझ रहा था।

सराय का मालिक प्रतिदिन देखता था कि गंगाधर और रामभद्र कहीं आते-जाते रहते हैं। उसने एक दिन गंगाधर से इसका कारण पूछा। गंगाधर ने अपनी समस्या उसके सामने खोलकर रख दी।

"तुम लोग इस छोटी सी बात को लेकर क्यों कष्ट उठाते हो? दिलीप के शिष्यों को किसी भी राजदरबार में मिनटों में काम मिल सकता है। इस के अलावा सारे देश में आदर के साथ उनका अपूर्व सत्कार भी होगा
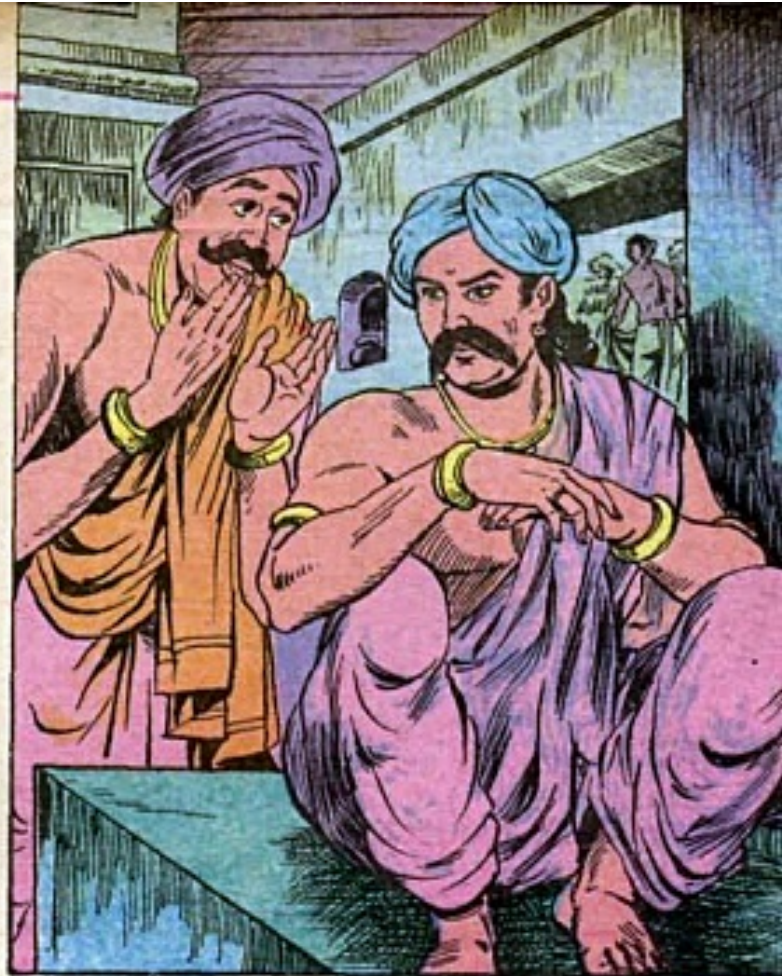
इसलिए वे हर किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते। जो उन्हें दस हज़ार मुद्राएँ समर्पित कर सकते हैं, उन्हीं को वे शिक्षा देते हैं," सराय के मालिक ने रहस्य खोल दिया।

गंगाधर पलभर चकित रह गया उसे यह बड़ा आश्चर्य जनक लगा कि गुरु भी शिक्षा का व्यापार करते हैं। यदि शिक्षा भी इसी प्रकार दी जाती रही तो युवकों के भविष्य का क्या होगा, यह सोचकर वह परेशान हो उठा। वह कुछ देर सोचता रहा और तब वहाँ से चल पड़ा। सुशान्त ने अपने पिता का अनुसरण किया। वे उसी वक्त राजधानी को छोड़ कर घर के लिए रवाना हो गए।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा,

"राजन, इससे विदित होता है कि गंगाधर लोभी है। वह दस हज़ार मुद्राएँ व्यय करने से झिझक कर अपने इकलौते पुत्र को शिक्षा दिलाने से पीछे हट गया। क्या यह उसका अविवेक नहीं है? इस सन्देह का समाधान जानकर भी न देंगे तो आप का सर फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इसपर विक्रमार्क ने इस प्रकार उत्तर दिया, "गंगाधर किसी भी दृष्टि से लोभी नहीं हैं। उसने अपने पुत्र के बारे में जो निर्णय लिया, वह अदूरदर्शिता का काम कभी नहीं हो सकता। उस ने दिलीप के शिष्यों के द्वारा जो अनुभव प्राप्त किया, उसी अनुभव ने उसको यह निर्णय लेने में बाध्य किया। जो गुरु शिक्षा के सामने धन को महत्व देता है, वह सच्चा गुरु कभी नहीं कहलाता। सच्चे गुरु की तो परिभाषा ही यही है कि उसे धन से नहीं वरन ज्ञान से प्रेम होता है। हो सकता है कि दिलीप एक योग्य और समर्थ गुरु हो। पर उन का पांडित्य उनके शिष्यों को सही माने में विद्वान न बनाकर धन अर्जित करने वाले बना देते है। इस का प्रत्यक्ष प्रमाण उनके शिष्य ही हैं। उनमें रत्ती भर भी विनय नहीं है। वे सब अहंकार के पुतले हैं। सुशान्त तो ऊँची शिक्षा प्राप्त न करने भी घर पर ही रहकर अपने पिता के कार्यों में मदद पहुँचाता रहा, साथ ही उसने प्रकृति तथा लोगों से भी बहुत सारा ज्ञान अर्जित किया। उसकी विनय-शीलता और बद्धिमता की सारे गाँव के लोग प्रशंसा करते थे, अपनी समस्याओं को सुशान्त के सामने रखकर उनके सन्तोष-जनक समाधान भी प्राप्त किया करते थे। ऐसे व्यक्ति को दिलीप को दस हज़ार मुद्राएँ चुका कर उनका शिष्य बनाने का मतलब जान-बूझ कर अपने पैरों पर अपने आप कुलहाड़ी मारने के समान होगा। इस प्रकार विचार करके ही गंगाधर अपने पुत्र को साथ लेकर घर लौट गया।"

राजा के इस प्रकार मौन-भंग करते ही बेताल शव के साथ गायब होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)
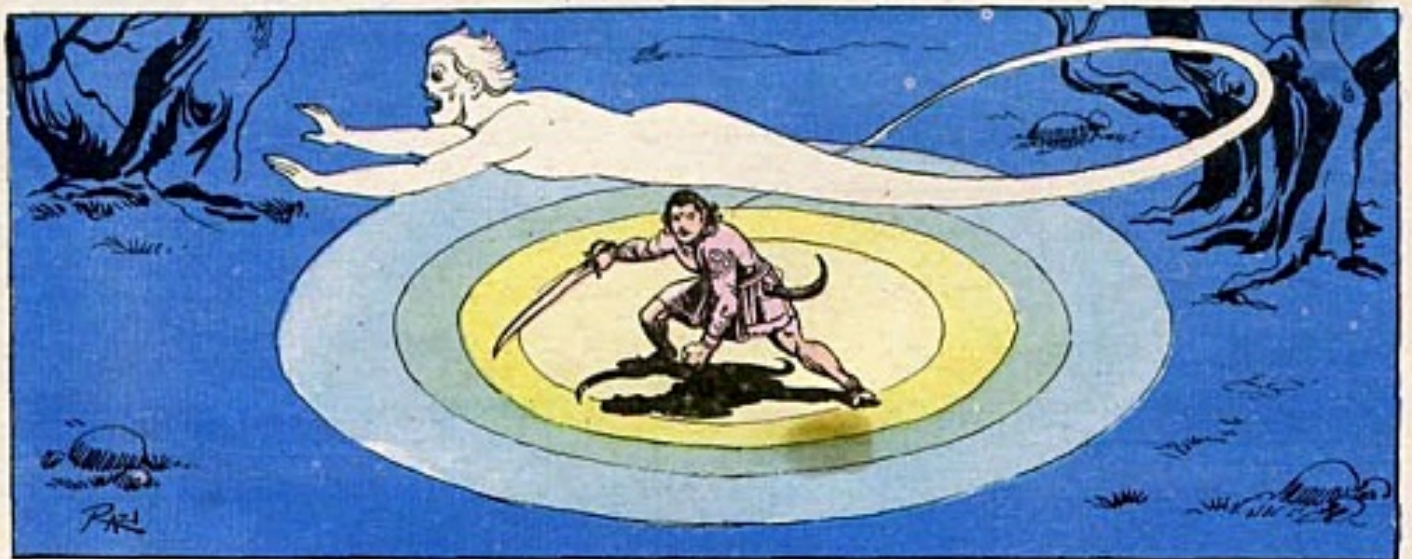
असन्तोष

रामगिरी के जमीन्दार के यहाँ केशव नौकरी की याचना करते हुए पहुँचा। जमीन्दार ने केशव से कुछ प्रश्न पूछे और उसके उत्तर से संतुष्ट होकर पूछा, "बताओ, तुम कितना वेतन चाहते हो ?"

केशव ने चट से उत्तर दिया, "आपकी जो इच्छा।"

"ऐसा नहीं, बताओ, तुम कितना वेतन चाहते हो ?" जमीन्दार ने फिर पूछा।

केशव ने संकोच करते हुए कहा, "दो सौ रुपये दीजिएगा।"

जमीन्दार ने मान लिया और कहा, "अच्छी बात है, तुम कल से ही काम पर लग जाओ !"

उस क्षण से केशव के अन्दर असन्तोष पैदा हुआ। वह सोचने लगा, "मैंने बिना सोचे समझे केवल दो सौ रुपये मांगे। यदि तीन सौ रुपये भी मांगता तो शायद जमीन्दार मान लेते।" यही उसकी चिन्ता का कारण था।

दूसरे दिन केशव जमीन्दार के घर पहुँचा, और काम पर लग जाने की सूचना जमीन्दार को दी।

जमीन्दार थोड़ा व्याकुल होने के समान चेंहरा बना कर बोले, "सुनो, तुम बुरा न मानो, ये दस रुपये लेते जाओ। इसके पहले मेरे यहाँ जो नौकर था, वह मुझ से कहे बगैर चला गया था। वह अब लौट आया है और मेरे पैरों पर गिरकर गिडगिड़ा रहा है कि मैं उसको फिर से काम दे दूँ।"

केशव जमीन्दार के हाथ से दस रुपये लेकर बोला, "मालिक, मुझे यह नौकरी नहीं मिली। बड़ा अच्छा हुआ। मैं इस समय बहुत प्रसन्न हूँ !"

"क्यों ? किसलिए !" जमीन्दार ने आश्चर्य में आकर पूछा।

"मैं यह बात आपको बता नहीं सकता। पर आपसे मेरा एक निवेदन है—आप के पास नौकरी मांगने जो भी आदमी पहुँचे, उस से कृपया यह न पूछियेगा कि तुम कितना वेतन चाहते हो ? पर आपके यहाँ उसे जो काम करना है, उस के आधार पर उसके वेतन का निर्णय आप खुद कीजिए।"

केशव के इस सुझाव पर जमीन्दार ने काफी देर तक सोचा, पर उसके दिमाग में कुछ न सूझा।
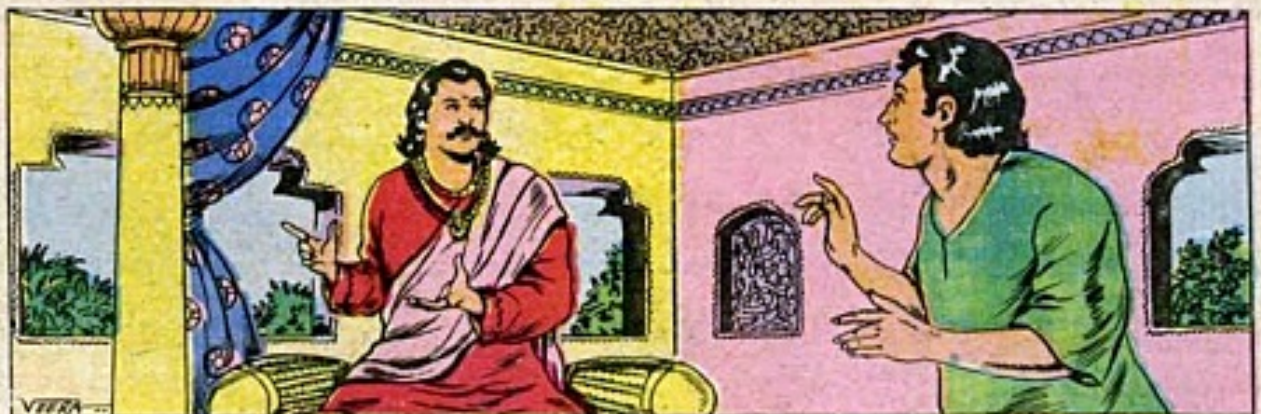
मैत्री का मूल्य

हसनपुर एक छोटा सा गाँव था। उस गाँव के तीन चौथाई लोग बुनकर थे। उन में गणपति और रघुपति न केवल पड़ोसी गाँव के थे, बल्कि अच्छे मित्र भी थे।

वे दोनों करघों पर बढ़िया ज़रीदार वस्त्र बुनकर उन्हें शहर में ले जाकर बड़े व्यापारियों के हाथ बेच दिया करते थे।

गणपति के यहाँ अपनी निजी बैल-गाड़ी थी। वह बैल-गाड़ी पर ही शहर आया-जाया करता था। रघुपति का परिवार बड़ा था। गाड़ी खरीदने के लिए उसके पास धन न था। इसलिए वह किराये की गाड़ी पर शहर में आया-जाया करता था। यदि कभी किराये की गाड़ी न मिलती तो वस्त्रों का गट्ठर सर पर रख कर घर से निकल पड़ता था।

गणपति हमेशा अपना हित और अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में अधिक ध्यान देता था, पर वह कभी मित्रों की आवश्यकताओ के बारे में सोचता तक न था। कभी उसके मकान के सामने बैल-गाड़ी खाली पड़ी रहती, तब भी वह रघुपति को आवश्यकता के वक्त देता न था। उलटे वह ऐसा स्वांग रचता, मानो वह रघुपति की अवस्था जानता ही न हो। इसी विचार से वह अकसर रघुपति से कहा करता था, "मित्र, तुम आखिर कितने दिनों तक इस प्रकार किराये की गाड़ियों पर निर्भर रहकर व्यापार चला सकोगे ? मेरी बात मान कर जहाँ तक हो सके, जल्दी गाड़ी खरीद लो। चाहे कुछ भी हो, निजी गाड़ी का लाभ कुछ और है।"

ऐसे परामर्श को सुनकर रघुपति कोई उत्तर न देता, बल्कि मुस्करा कर रह जाता।

उसी गाँव में जगपति नामक उन दोनों का एक मित्र था। वह खूब पढ़ा-लिखा था। पर उसे कोई नौकरी न मिली थी, इसलिए वह खेती-बाड़ी के काम में अपने पिता की सहायता किया करता था।

वनिता शर्मा

कुछ दिन बाद जगपति को उसके एक रिश्तेदार के प्रभाव से नौकरी मिल गई। इस कारण जगपति अपनी पत्नी व बच्चों के साथ शहर चला गया। जगपति के शहर जाने के बाद जब कभी गणपति या रघुपति शहर जाते तो उन के हाथ जगपति की माँ अपने बेटे के लिए मिठाईयाँ, अचार या और कोई वस्तु भेजा करती थी।

जगपति के घर जब भी गणपति या रघुपति जाते तो वह अपने घर खाना खाने के लिए उनसे आग्रह करता था। जगपति की पत्नी भी मिलनसार थी। वह रसोई बनाने में बहुत कुशल थी।

पर रघुपति कोई न कोई बहाना बनाकर जगपति के घर भोजन किये बिना बचकर भाग जाता था। लेकिन गणपति जब भी जगपति के घर जाता तो वह अवश्य उसके यहाँ भोजन किया करता था। इस के पूर्व उसके लिए शहर में कहीं भोजन का अच्छा प्रबन्ध न था, इसलिए उसे खाने की बड़ी कठिनाई होती थी। इसके अलावा वह पेटू भी था।

कुछ महीने बीत गये। गणपति ने भांप लिया कि जगपति के घर क्रमशः उस का आदर घटता जा रहा है। सुमती और उसके बच्चे अब उस के साथ दिल खोल कर बात नहीं करते थे, उल्टा उस के सामने रघुपति की बड़ी प्रशंसा करते थे।

एक बार गणपति रघुपति के घर पहुँचा। व्यापार संबधी बातचीत के बाद वह बोला, "मित्र, तुमने भी यह बात भांप ली होगी कि

मैत्री का मूल्य हम जैसे देहातों में बसने वाले ही अच्छी तरह से जान सकते हैं । शहर की जिन्दगी कुछ अलग है—निराली है । इस का उदाहरण हमारा मित्र जगपति है । ऐसा लगता है कि उस को और उस की पत्नी को शहर की हवा लग गई है । उनके अन्दर पहले जैसी आत्मीयता का भाव नहीं रहा ।''

रघुपति आश्चर्य में आकर बोला, ''मुझे तो ऐसा कुछ नहीं लगता । मेरे प्रति वे लोग पहले ही जैसा व्यवहार करते हैं ।''

गणपति परिहास पूर्वक बोला, ''यह बात भी सही है । वे लोग तुम्हारी प्रशंसा करते थकते नहीं । इस में न मालूम क्या रहस्य छिपा हुआ है, मेरी समझ में नहीं आ रहा है ।''

''इस के भीतर का रहस्य बस यही है कि मैंने भूल से सही एक समय भी उस के घर भोजन नहीं किया । मेरा संबध केवल बातों तक सीमित था, पर खाने तक नहीं !''

यह जवाब सुनते पर गणपति को लगा कि किसी ने उसकी पीठ पर चाबुक मार दिया हो । अब उस की समझ में आया कि जगपति के घर रघुपति को क्यों ऐसा आदर प्राप्त है ।

बीबी-बच्चों के साथ शहर में गृहस्थी चलाने वाले जगपति के घर वह जब भी शहर में जाता, मुफ़्त में खाना खा लेता, यह उन के लिए भारी बोझ था ।

इस सच्चाई को समझने के बाद गणपति के स्वभाव में बहुत बड़ा परिवर्तन आया । उसने और लोगों के सुख-दुःख को समझ कर उन के अनुकूल व्यवहार करना सीख लिया । इस के बाद वह ज़रूरत के समय केवल रघुपति को अपनी गाड़ी देने लगा, साथ ही जब भी शहर जाता, अवश्य रघुपति के बच्चों के लिए कुछ न कुछ ले जाता और यदि अनिवार्य स्थिति न हो तो उन के घर भोजन भी नहीं करता था । इस प्रकार उसके व्यवहार में परिवर्त्तन होने से उसे मित्र के घर में पुनः समुचित आदर प्राप्त होने लगा । सच में ही रघुपति ने सच्चाई बताकर उंसकी आँखें खोल दी थीं ।

राक्षस-नीति

एक बार-भक्तों का एक दल काशी की यात्रा पर चल पड़ा। उस दल को जंगल से होकर यात्रा करनी पड़ी। उस जंगल में एक राक्षस रहता था। एक साथ इतने सारे लोगों को देखते ही उसके मन में कुछ तमाशा करने का विचार सूझा।

इस विचार के आते ही राक्षस एक महावृक्ष के ऊपर से उस दल के सामने कूद पड़ा। इस पर सारे भक्त थर-थर कांपने लगे।

राक्षस उन्हें समझाते हुए बोला, "तुम लोग डरो मत! तुम लोगों में से यदि कोई एक मेरा आहार बनने के लिए स्वयं तैयार हो जाये तो मैं बाकी सब लोगों को छोड़ दूँगा वरना सब लोगों को मार डालूँगा।"

प्रत्येक भक्त यही सोचने लगा कि उसके पार्श्व वाला आदमी राक्षस का आहार बनने के लिए तैयार हो जाये तो क्या ही अच्छा हो! पर उनमें से कोई भी स्वयं आगे न आया। इस बात को भांप कर राक्षस सबको मारने के लिए तैयार हो गया।

ऐसी अवस्था में भक्तवृन्द में से शारंगपाणि नामक एक भक्त आगे आया और बोला, "हे राक्षस श्रेष्ठ! मेरा भक्षण करके बेचारे इन सब लोगों को छोड़ दो।"

राक्षस धीरे से मुस्करा उठा और शारंगपाणि को छोड़ अन्य सबको खा गया।

महानता की कसौटी

ब्रह्मदत्त काशी राज्य पर राज्य करते थे। उनके समय में बोधिसत्व ने काशीनरेश के पुत्र के रुप में जन्म लिया। उसने तक्षशिला में जाकर सोलह वर्ष की आयु के पूरा होने के पूर्व ही समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया। इसके बाद अपने पिता की मृत्यु होने पर वह काशी का राजा बना और धर्माचरण करते हुए राज-काज चलाने लगा।

बोधिसत्व के शासन काल में उनकी प्रजा किसी प्रकार के कष्ट, अनिष्ट, अन्याय और अत्याचार के बिना सुखमय जीवन बिताने लगी। इस कारण से न्यायालय के लिए कोई काम न रहा। अनेक वर्ष बीत गये पर न्याय की मांग करते हुए एक भी न्यायालय में नहीं पहुँचा। जनता के बीच कोई आन्दोलन था, इस कारण से राजा को यह समझने में कठिनाई हुई कि जनता उसके विषय में क्या सोचती है और उसके शासन में क्या त्रुटियाँ हैं। कम से कम किसी मुकदमे को लेकर न्यायालय की शरण लेने वाले भी होते तो राजा को अपनी त्रुटियों को समझने में सहायता मिल जाती परन्तु राजसभा की ओर झांकने वाला तक कोई न था।

इस कारण से राजा एक दिन अपने रथ पर सवार हो सारा नगर घूमते हुए जो भी उनके सामने आया उससे पूछने लगे कि मेरे शासन में तुम्हें क्या त्रुटि दिखाई देती है। पर सब कोई यही उत्तर देते थे, "महाराजा, हम लोग आपके शासन में बहुत ही सुखी हैं, हमें तो कोई त्रुटि दिखाई नहीं देती।"

उस पर भी राजा को सन्तोष न हुआ। उन्होंने अपने राजसी वस्त्राभूषण उतार दिए और एक साधारण नागरिक के वेष में रथ पर नगर को पार किया। गाँवों का भ्रमण करते हुए यह

जानने का प्रयत्न किया कि जनता उनके विषय में क्या सोचती है। उन्होंने कई गाँवों के चक्कर लगाये किन्तु कहीं भी उनके शासन की आलोचना नहीं सुनाई दी। वे यह सोचकर बहुत परेशान हुए कि किस प्रकार अपने शासन के बारे में लोगों के विचार जानें।

अन्त में राजा रथ पर सवार होकर राज्य की सीमा पर पहुँचे और सीमा के पथ से होकर राजधानी की ओर लौटने लगे। उस समय काशी नरेश के रथ के सामने से एक और रथ आ निकला। दोनों रथों का एक दूसरे से हटकर बच निकलना सम्भव न था क्योंकि पथ संकीर्ण था और उसके दोनों छोरों पर ऊँची मेड़ें थीं।

दोनों रथ थोड़े अन्तराल के साथ आमने-सामने रुक गये।

काशी नरेश के सारथी ने सामने वाले सारथी से कहा, "हमें आगे जाना है, तुम अपने रथ को पीछे हटा लो।"

"मुझे पीछे हटने के लिए कहने वाले तुम कौन होते हो? तुम्हीं क्यों नहीं अपना रथ हटा लेते?" दूसरे सारथी ने पूछा।

इस पर दोनों सारथी वाद-विवाद करने लगे। "जानते हो, इस रथ पर कौन सवार हैं? काशी के राजा हैं!" काशी नरेश के सारथी ने कहा।

"इस रथ पर कोसल नरेश सवार हैं!" दूसरे सारथी ने कहा।

काशी राज्य जितना बड़ा था, कोसल राज्य

भी उतना ही बड़ा था। वय और विद्या में भी कोसल नरेश काशी नरेश की बराबरी करते थे। वे भी काशी नरेश की भांति छद्म वेश में सारे गाँव घूमकर अपने शासन के प्रति जनता के विचार जानने के लिए निकल पड़े थे। उन्हें यह सोचकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उनके रथ को मार्ग न देने वाला यह कौन है। परन्तु वे स्वयं चुप रहे।

"आपके राजा में ऐसा कौन सा बड़प्पन है?" काशी नरेश के सारथी ने पूछा।

इसका उत्तर कोसल नरेश के सारथी ने यों दियाः

"दलहं दलहस्य विवपति मल्लिको मुदुना मुदुल

साधुंपि साधुमा जेति असाधुंपि असाधुना,
एतादिसो अयं राजा भगृगा उय्याहि
सारथि ॥''

[हमारे राजा मल्लिक दुष्टों के लिए कठोर हैं और सज्जनों के साथ सज्जनतापूर्ण व्यवहार करते हैं। सज्जनता के लिए सज्जनता के साथ पुरस्कार देते हैं और दुष्टों को दुष्टता के साथ दबा देते हैं ।]

यह उत्तर सुनकर काशीनरेश के सारथी ने यों कहा:

''अक्कोधेन जिने क्रोध असाधुं साधुना
जिने,
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिवादिनं
एतादिसो अयं राजा मगृगा उय्याहि
सारथि ॥''

[हमारे महाराजा क्रोध पर शांति के साथ विजय प्राप्त करते हैं, दुष्टता को अपनी साधुता के द्वारा जीतते हैं। पुरस्कारों द्वारा लोभी व्यक्तियों को पराजित करते हैं, झूठ के बदले सत्य प्रदान करते हैं ।]

कांशीनरेश के सारथी के मुँह से ये शब्द सुनकर कोसल नरेश मल्लिक को कौतुहल हुआ। उन्हें इस बात की प्रसन्नता भी हुई कि एक राजा ऐसा भी है जिसमें राजोचित गुण उनसे अधिक विद्यमान हैं। वे बड़ी आतुरता के साथ रथ से उतर आये और काशी नरेश को प्रणाम करके बोले, ''महात्मा, अभी तक मैं सोचता था कि मुझे कुछ और नहीं करना है, परन्तु आज ज्ञात हुआ कि अभी मुझे बहुत कुछ सीखना है। और वह सब कुछ मुझे सीखना है आपसे ! आज मुझे अपनी त्रुटि का बोध हुआ। उसको दूर करके भविष्य में और अधिक न्यायपूर्वक राज्य-संचालन करूँगा ।''

इसके बाद काशी नरेश अपने नगर को लौट आये। वे पहले से कहीं अधिक धर्माचरण करते हुए शासन कार्य संभालने लगे और साथ ही आत्म-चिन्तन में अपने आप को लगाया। समय के साथ-साथ उनके राज-संचालन में अनेक सुधार आए और उनकी प्रजा पहले से भी अधिक सुखी जीवन बिताने लगी ।

भारत का पुनरुत्थान

राजनैतिक चेतना ने सन १८५७ में जैसे सिपाही-विद्रोह का मार्ग प्रशस्थ किया, वैसे भारत के पुनरुत्थान के लिए मार्गदर्शन करने वाले नये भाव, राष्ट्रीय चेतना और सुधार सारे देश में व्याप्त होने लगे। उस समय के समाज सुधारकों में राजा राममोहन राय का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है।

राममोहन राय का जन्म बंगाल प्रदेश के हुगली जिले में सन १७७२ में हुआ था। उन्होंने समाज में व्याप्त सतीप्रथा, वर्णभेद आदि कुरीतियों को दूर करने के लिए अनवरत श्रम किया। सन १८२८ में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की और बड़ी लगन के साथ इन बातों का प्रचार किया—ईश्वर एक है, जाति और वर्ण-भेद को त्यागना चाहिए और नारी जाति का उद्धार करना चाहिए।

उन्होंने अँग्रेज़ों के बराबर भारत वासियों को भी समान स्थान देने की मांग की। भारत में अँग्रेज़ी शिक्षा के महत्व को पहचान कर उसके प्रसार के लिए अथक प्ररिश्रम किया। दिल्ली के शासक ने राममोहन राय को 'राजा' की उपाधि देकर उनका सम्मान किया और भारत की स्थिति अँग्रेज़ों को परिचित कराने के हेतु उनको इंगलैण्ड भेज दिया।

राजा राममोहन राय का देहान्त सन १८३३ में इंगलैण्ड में हुआ। उनके बाद उल्लेखनीय प्रमुख समाज सुधारक स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं। उनका जन्म गुजरात के मोर्ति नामक गाँव में सन १८२४ में हुआ। उन्होंने वेदों पर नये भाष्य लिखे और आर्य समाज की स्थापना करके अनेक सुधार आरम्भ किये।

स्वामी दयानन्द सरस्वती बहुत बड़े विद्वान और शिक्षाशास्त्री थे। उनके विचारों ने हरद्वार के गुरुकुल विद्यालय को अपूर्व प्रेरणा प्रदान की। मात्र ज्ञान शिक्षा देने के साथ-साथ गुरुकुल शिक्षा-पद्धति, छात्रों के मन में हमारी संस्कृति की परम्परा, और नैतिक मूल्यों को हृदयंगम करने का मार्ग खोल दिया।

सन १८३६ में बंगाल के कुमरपुर नामक गाँव में श्री रामकृष्ण परमहंस का जन्म हुआ। छः वर्ष की आयु में वे काले बादलों में उड़ने वाले सफ़ेद बगुलों की पंक्ति को देख तन्मय हो उठे और अपने सर्वस्व को भूलकर ध्यान समाधि की स्थिति में आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त कर सके।

इसके बाद रामकृष्ण रानी रसमई द्वारा निर्मित काली मन्दिर के पुजारी बने। कहा जाता है कि वे देवी के दर्शन प्राप्त करके उनके साथ आमने-सामने हो बातचीत किया करते थे। उन्होंने समस्त भक्ति-मार्गों का अध्ययन किया और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी मार्गों का लक्ष्य एक ही है।
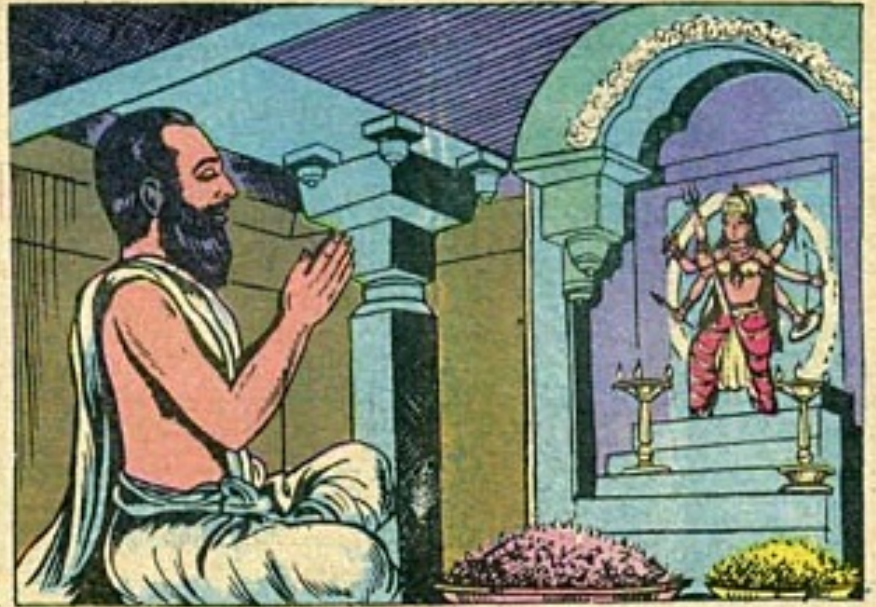
रामकृष्ण परमहंस से आकृष्ट हो कई लोग उनके भक्त बने। अत्यन्त मार्मिक आध्यात्मिक सत्यों को उन्होंने सरल व सीधे ढंग से प्रकट किया, जिससे उनके भक्त उनकी इस प्रतिभा पर मुग्ध हो गये। क्रमशः रामकृष्ण परमहंस के भक्त उनको भगवान का अवतार मानने लगे।

रामकृष्ण परमहंस के प्रति आकृष्ट हुए युवकों में नरेन्द्र नामधारी स्वामी विवेकानन्द प्रमुख हैं। उनका जन्म सन १८६३ में हुआ और वे सन १८८१ में सर्वप्रथम रामकृष्ण परमहंस के दर्शन करके उनके शिष्य बन गये।

सन १८९३ में अमेरिका के शिकागो नगर में जो विश्व सर्वधर्म सम्मेलन हुआ था, उसमें स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय प्रतिनिधि के रुप में भाग लिया। वहाँ पर उन्होंने आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन करते हुए जो भाषण दिया उसे सुनकर पाश्चात्य देशों के जिज्ञासु व्यक्ति आश्चर्यचकित हो गये।

सन १८९३ में ही इंगलैण्ड में अपनी शिक्षा समाप्त कर युवक अरविन्द भारत को लौट आए ! कालान्तर में वे भारत के राष्ट्रीय प्रवक्ता के रुप में विख्यात हुए।
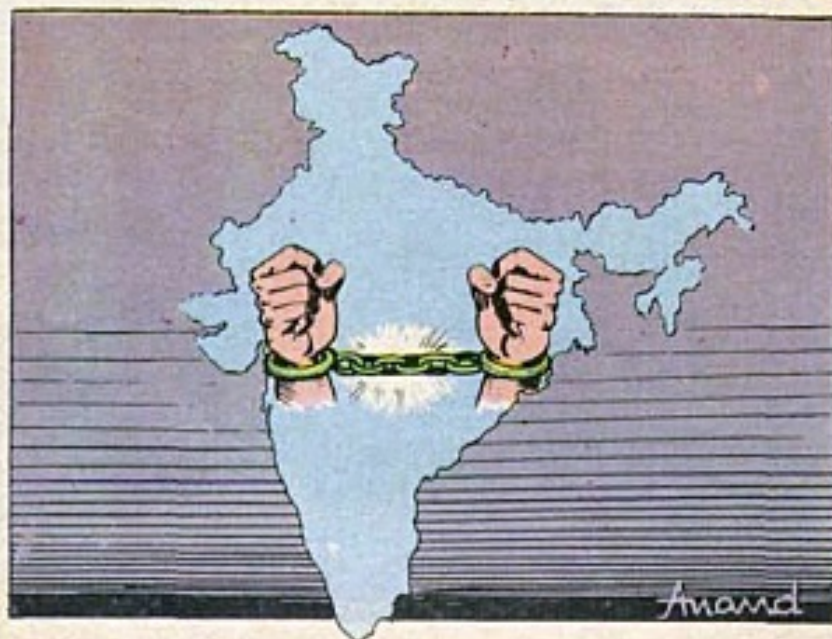
लगभग इसी काल में सुविख्यात उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी ने सुप्रसिद्ध 'वन्दे मातरम्' गीत की रचना की। 'वन्दे मातरम्' देशभक्ति को प्रबोध करने वाला था और इस गीत ने स्वातंत्र्य् समर योद्धाओं को तारक-मंत्र के रुप में प्रोत्साहित किया।

दहेज का पिशाच

सीतापुर नामक गाँव में गोविन्द दास नामक एक साधारण गृहस्थ रहता था। उस की इकलौती बेटी सुभाषिणी अत्यंत सुशील लड़की थी।

सुभाषिणी जब विवाह के योग्य हो गई, तब गोविन्द दास ने विवाह का प्रयत्न आरम्भ किया। परन्तु प्रत्येक रिश्ते वाला हज़ारों रुपये दहेज मांगता था। गोविन्ददास की समझ में न आया कि बेटी की शादी कैसे करे। उसके पास इतने साधन नहीं थे कि ज़ारों रुपयों का इन्तजाम कर सके। वह चिंता में पड़ गया।

उन्हीं दिनों गोविन्द दास के बचपन का साथी सुदर्शन उस के घर आया। सुदर्शन शहर में व्यापार करता था। वार्तालाप में गोविन्द दास ने अपनी बेटी की शादी की समस्या सुदर्शन के सामने रखी।

सुदर्शन ने समझाया, "मेरे मित्र, तुम यह सोच कर कि दहेज नहीं दे सकते, बेटी की शादी टालते जाओगे तो काम कैसे चलेगा! सुभाषिणी की आयु बीस साल बताते हो। कोई अच्छा रिश्ता पक्का कर लो। मैं पांच—छः हज़ार रुपयों का प्रबन्ध कर सकता हूं। इसके चुकाने की बात फिर सोच लेंगे।"

अपने मित्र का आश्वासन पाकर गोविन्द दास इस बार बड़ी लगन के साथ अपनी बेटी की शादी के लिए अच्छा रिश्ता ढूँढ़ने लगा और अन्त में दूर के एक गाँव के युवक के साथ रिश्ता पक्का कर दिया। वर के माता-पिता ने तीन हज़ार रुपये दहेज में मांगे।

इस रिश्ते के पक्का होने में पांच-छः महीने लग गये। अब विवाह के मुहूर्त के दिन में पंद्रह दिन का समय रह गया था। गोविन्द दास ने शहर जाकर सुदर्शन को शादी की बात बताई और उसके वचन की याद दिलाई।

सुदर्शन विस्मय प्रकट करते हुए बोला, "क्या मैंने पांच-छः हज़ार रुपयों का प्रबन्ध

करने की बात कही थी ? मुझे ठीक से स्मरण नहीं है। चाहे जो हो, पर असली बात यह है कि फिलहाल मेरा व्यापार मन्द पड़ गया है। इधर व्यापार में भारी नुकसान हुआ है।"

यह जवाब पाकर गोविन्द दास चकित रह गया। उसने तो अपने मित्र के आश्वासन पर ही यह रिश्ता पक्का किया था। वही मित्र अब अपने वादे को भुला बैठा था। उसे सुदर्शन की करनी पर बड़ा क्रोध आया। लेकिन उसने अपने दोस्त की निन्दा नहीं की, चुपचाप घर लौट आया।

आखिर गोविन्द दास के सामने एक ही मार्ग रह गया—अपने होने वाले समधी को समझा कर तत्काल विवाह के मुहूर्त को स्थगित किया जाए, इस बीच रुपयों का प्रबन्ध करके फिर तारीख निश्चित की जाए।

यह विचार करके वह एक दिन शाम को अपने समधी के गाँव के लिए चल पड़ा।

संध्या के होते-होते गोविन्द दास एक जंगल के पास पहुँचा और तेज़ी के साथ चलने लगा। उस रास्ते से अक्सर लोगों का और गाड़ियों का आना-जाना लगा रहता था। इस कारण से वह जंगल और अन्धेरे से डरा नहीं।

जंगल के बीच पहुँचते ही एक जगह पेड़ की डालों में आहट पाकर गोविन्द दास ने सर उठा कर ऊपर देखा। एक काली आकृति डाल पर से उसके सामने कूद पड़ी और उसने गोविन्द दास से पूछा, "इस अन्धेरे में तुम अकेले क्यों चल रहे हो ? क्या तुम्हें डर नहीं लगता ?"

गोविन्द दास सहज ही साहसी था। वह डरा नहीं। उसने समझ लिया कि उसके सामने रास्ता रोक कर खड़ा हुआ प्राणी पिशाच है। कायरों को देख पिशाच और अधिक तंग करते हैं। इसलिए गोविन्द दास ने पिशाच की ओर एक बार एड़ी से चोटी तक खूब परख कर देखा और कहा, "डर किसलिए ? यहीं समीप के गांव में एक आवश्यक काम से जा रहा हूँ।"

"कैसा काम है ? बता दो, तभी मैं तुम्हें जाने दूँगा।" पिशाच ने शर्त रखी।

"मैं अपने इस काम की कहानी कई लोगों को सुनाकर थक गया हूँ। अब तुम्हीं एक बचे हो।" यह उत्तर देकर गोविन्द दास ने पिशाच

को सारा किस्सा सुनाया और बोला, "न मालूम इस जन्म में मेरी लड़की की शादी का योग है या नहीं !"

"क्यों नहीं ? तुमने जो मुहूर्त पक्का कर लिया, उसी लग्न में तुम्हारी लड़की की शादी होगी। तीन हजार रुपये मैं देता हूँ ," पिशाच बोला ।

गोविन्द दास चकित हो देखता ही रह गया। इस बीच पिशाच पेड़ पर चढ़ बैठा, एक पोटली के साथ लौट कर बोला, "इसके अन्दर तीन हज़ार रुपये हैं। अब तुम अपने घर लौट कर खुशी से लड़की की शादी कर दो ।"

गोविन्द दास की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसे तो आशा भी न थी कि इस प्रकार उसकी समस्या का समाधान हो जायेगा। उसने मन ही मन भगवान को धन्यवाद दिया और रुपये लेकर सवेरे तक घर लौटा। निश्चित मुहूर्त पर सुभाषिणी की शादी संपन्न हो गई। वर पक्ष के लोगों ने तीन हज़ार रुपये सुरक्षित रुप में छिपा लिये ।

इस के तीन दिन बाद वर के पिता अपने पुत्र और पुत्र-वधु के साथ किराये की गाड़ी में अपने गाँव के लिए रवाना हुए। रास्ते में जब वे लोग पिशाच के निवास वाले वृक्ष के समीप पहुँचे तब एक पिशाच यह कह कर नीचे कूद पड़ा, "अरे पिशाच ! मैं तुम्हें मार डालूँगा, निगल जाऊँगा ।"

पिशाच को देखते ही गाड़ी में बैठे हुए सब

लोग थर-थर कांपने लगे, "हम तो मनुष्य हैं, पिशाच नहीं। अपने पुत्र का विवाह करके हम अपने गाँव को लौट रहे हैं ।"

"हमारे पास मिठाईयाँ और मिष्टान्न हैं। बताओ तुम्हें कौन सी वस्तु अधिक पसन्द है ?" वर की माँ ने पूछा ।

"गाड़ी के अन्दर मुझे पिशाच साफ दिखाई दे रहा है। मैं उसको निगल डालूँगा ।" यह कहते हुए पिशाच और थोड़ा समीप आया ।

वर की माँ घबरा कर बोली, "यह तो पिशाच नहीं, हमारी बहू है। बेटी सुभाषिणी, तुम पिशाच को अपना चेहरा ठीक से दिखला दो ।"

ये बातें सुनकर पिशाच अट्टहास करके

बोला, "मुझे तुम्हारे पति के वस्त्रों के भीतर छिपाया हुआ दहेज का पिशाच दिखाई दे रहा है । मैं उसी को निगलना चाहता हूँ ।"

वर का पिता साहस बटोर कर धन की थैली को पिशाच को दिखा कर बोला, "यह तो मेरे समधी के द्वारा अपने दामाद को दिये गये दहेज की थैली है । इस में तीन हज़ार रुपये हैं । ठीक से देख लो ।"

पिशाच ने एक बार धन की थैली का स्पर्श किया, घृणापूर्ण चेहरा बनाकर कहा, "तुम लोग विवाह जैसे मंगलमय कार्य संपन्न करने के लिए वार्तालाप के संदर्भ में उस पिशाच की बात क्यों उठाते हो । इस धन-पिशाच के वास्ते अनेक मानव हमारे पिशाचों से भी कहीं अधिक दुष्टता पूर्ण व्यवहार करते हैं ।" यह कह कर वह थैली को खींच कर उछल कर पेड़ पर चला गया ।

इस पर सुभाषिणी दीनता भरे स्वर में अपनी सास से बोली, "आप लोगों ने कहा था कि मुहूर्त के समय दहेज की रकम न चुका दो तो शादी न होगी । अब वह धन पिशाच उठा कर ले गया है । मेरा क्या होगा ?"

सुभाषिणी की सास उस के दोनों हाथ पकड़ कर बोली, "पिशाच की बातों से हमारी आँखें खुल गई हैं । तुम दहेज की बात भूल जाओ ।"

सुभाषिणी के ससुर बड़े ही प्यार भरे शब्दों में बोले, "सुभाषिणी, यह पिशाच दहेज के पिशाच को उठाकर ले गया है । तुम चिन्ता न करो । मैं तुम्हें तीन हज़ार रुपयों के मूल्य के गहने बनवा कर दूँगा । तुम्हारे पिता को निमंत्रित कर उन से मैं इस बात के लिए क्षमा याचना करूँगा कि मैंने एक तो उन पर दहेज़ देने पर जोर डाला, तिस पर मुहूर्त के पूर्व चुकाने की शर्त लगाई । ठीक है न ?"

इन बातों से सुभाषिणी को अपूर्व आनन्द मिला । उसे तो डर लग रहा था कि धन की थैली के छिन जाते पर उसके सास-ससुर उसे तंग करेंगे, और क्या पता कि शायद वापस ही भेज दें । परन्तु अब चिन्ता की कोई बात नहीं थी । पेड़ की डाल पर बैठे पिशाच ने अपना हर्ष प्रकट करते हुए जोर से तालियाँ बजाईं ।

जन्म का नाता

रमेश सोलह साल का लड़का था। वह हमेशा किसी न किसी बात को लेकर उदास रहा करता था। एक दिन वह गाँव के बाहर तालाब की मेड़ पर बैठा हुआ था। उस समय उसने देखा कि एक चोर जमींदार के चार वर्ष के बच्चे को उठा कर भाग रहा है।

रमेश की हिम्मत और ताक़त की सब प्रशंसा करते थे। ऐसे अवसर वह चुप नहीं बैठा रह सकता था। उत्तेजित होकर वह उठ खड़ा हुआ। उसने चोर को रोका और अन्धा-धुंध उसे पीटने लगा। इस पर वह डर गया और बच्चे को वहीं छोड़कर भाग गया।

रमेश उस बच्चे को लेकर जमींदार के घर पहुँचा और सारी बातें बताईं। तब तक जमींदार को इस बात का पता न था कि उसके बेटे को चोर उठा ले गया है। उसने रमेश की प्रशन्सा की और अपने नौकरों को डाँटा। साथ ही रमेश को सोने का एक सिक्का पुरस्कार में देकर भेज दिया।

रमेश की समझ में न आया कि उस सिक्के का क्या करे। उसने थोड़ी देर तक खूब सोचा। फिर तालाब की मेड़ पर एक जगह उसको गाड़ कर रख दिया और उस स्थान की पहचान के लिए वहाँ पर एक पौधा रोप दिया।

कुछ दिन बीत गए। एक दिन उस देश का राजा देशाटन करते हुए रमेश के गाँव में पहुँचा। गाँव के अधिकारी ने राजा की सेवा करने के लिए रमेश को नियुक्त किया। रमेश की सेवा-सुश्रुआ, बुद्धिमता और साहस ने राजा को आकृष्ट किया। उसने रमेश की सहायता करनी चाही।

राजा ने रमेश से कहा, "तुम्हारे व्यवहार से मैं प्रसन्न हो गया हूँ। तुम्हें पुरस्कार के रुप में कुछ न कुछ देता चाहता हूँ। बताओ, तुम क्या चाहते हो ?"

रमेश विनयपूर्वक बोला, "महाराज, न

गोपाल दास

मालूम क्यों हमेशा मेरा मन उदास रहता है। मैं चाहता हूँ कि सब लोगों की भाँति मेरा मन भी हमेशा प्रसन्न रहे तो बहुत ही अच्छा होगा। इसलिए कृपया बताइये कि मुझे क्या करना होगा।"

"छोटी-छोटी बातों को लेकर चिन्तित रहने वाले तुम जैसे सदा उदास रहते हैं। इस संसार में हम लोग कोई पशु या पक्षी के रुप में पैदा न होकर मनुष्य के रुप में पैदा हुए हैं। इसलिए हर मनुष्य को सदा प्रसन्न रहना चाहिए," राजा ने कहा।

रमेश क्षण भर सोचकर बोला, "प्रभु! मेरा एक छोटा सा निवेदन है। हमारे गाँव का प्रत्येक आदमी कभी न कभी गाँव को छोड़कर कहीं आता-जाता रहता है। मेरे लिए तो अपना कहने वाला कोई नहीं है। हमेशा इसी गाँव में मुझे रहना पड़ता है। इसलिए मुझे शक है कि इसी कारण से शायद मेरा मन हमेशा उदास रहता है।"

राजा को उस पर दया आ गई। उसने सोचा कि यदि वह चाहे तो रमेश की सहायता कर सकता है। शायद इससे इस सीधे-सादे की परेशानी कम हो जाये। यह सोचकर उसने रमेश को समझाया, "तुम चिन्ता न करो और यह मत सोचो कि तुम्हारे कोई नहीं है। मैं ही तुम्हारा बन्धु और रिश्तेदार हूँ। राजधानी को लौटते समय मैं तुम्हें भी अपने साथ ले जाऊँगा। तुम जितने दिन चाहो वहाँ रह सकते हो। वहाँ की विचित्रताओं को देखकर अपना मनोरंजन करना। यदि तुम वहीं पर रह जाना चाहो तो रहो। यदि तुम्हारा मन न लगा तो तुम्हें फिर से तुम्हारे गाँव भेज दूँगा।"

राजा का यह आश्वासन पाकर रमेश का मन उत्साह से भर उठा। उसने राजा के साथ राजधानी पहुँचकर वहाँ के विचित्र दृश्य देखते हुए थोड़े दिन बिताने चाहे। उसने सोचा कि शायद स्थान-परिवर्त्तन से उसके मन का बोझ हल्का हो जाये, परन्तु उस समय उसे अपने हाथों से गाड़ा गया सोने का सिक्का याद आया। राजधानी में खर्च के लिए सिक्के को ले जाने के विचार से वह तालाब की मेड़ पर पहुँचा।

परन्तु उसने पहचान के लिए जो पौधा रोप

छोटी रकम के लिए उदास हूँ। यों विचार कर उसने कहा, ''महाराज, सौ सोने के सिक्के !''

राजा को उस पर दया आ गई। उसने समझाया, ''तुम चिन्ता न करो। जमीन के अन्दर जहाँ भी सोना छिपा हो, मुझे उसका पता लग जाता है। आज शाम को हम तालाब की मेड़ पर चलेंगे।''

राजा के मुँह से ये बातें सुनकर रमेश बहुत खुश हुआ। इस बीच राजा ने सोचा कि यह युवक व्यर्थ में ही परेशान है। इसके पास सोने के सिक्के कहाँ से आए ! अवश्य ही झूठ बोल रहा होगा। परन्तु राजा को रमेश की अवस्था देखकर उसपर सचमुच में दया आ गई थी। इसलिए गुप्त रुप से उसकी सहायता करने के विचार से उसने अपने एक सेवक को भेज कर तालाब की मेड़ पर सौ सिक्के गड़वा दिये। शाम को राजा रमेश को अपने साथ लेकर वहाँ पहुँचा। जहाँ पर सोने के सिक्के गड़वाये थे, वह स्थान दिखाकर राजा ने रमेश से कहा, ''तुम यहाँ पर खोद डालो।''

रमेश ने कुदाल लेकर उस स्थान पर खोदना आरम्भ किया। फिर क्या था, कुछ क्षणों में ही सोने के सिक्के निकल आए।

''तुम ठीक से गिनकर देखो, सौ सिक्के हैं या नहीं !'' राजा ने आदेश दिया।

सोने के सिक्कों को देखते ही रमेश के चेहरे पर और अधिक उदासी छा गई।

राजा ने विस्मय में आकर पूछा, ''यह क्या ? तुम अपने खोये हुए धन को पाकर भी प्रसन्न मालूम नहीं होते !''

रमेश राजा के चरणों पर गिर कर बोला, यह सोचकर डर के मारे झूठ बोला था कि मैं छोटी सी रकम के लिए उदास हो रहा हूँ, यह बात मालूम होने पर आप मेरा परिहास करेंगे। सच तो यह है कि मैंने एक ही सिक्का गाड़ रखा था। यह धन किसी और का है।''

''चाहे किसी का भी क्यों न हो, तुम्हें मिल गया है न ! इसलिए यह सारा धन तुम्हारा ही है,'' राजा ने हँसते हुए कहा।

''प्रभु ! यह धन मुझे नहीं चाहिए। मैं सोने का एक सिक्का खोकर इतना उदास हूँ। ऐसी अवस्था में सौ सोने के सिक्के खोने वाले को न

जाने कितना दुख होगा ! इसलिए मैं दूसरों का धन नहीं लेना चाहता," रमेश ने अपना दृढ़ निश्चय सुनाया ।

रमेश की सचाई और ईमानदारी पर राजा बहुत प्रसन्न हुआ । अब तो उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस युवक की परेशानी अवश्य दूर करनी चाहिए । उसकी प्रशन्सा करते हुए बोला, "यह धन मेरा है । मैंने तुम्हारे लिए ही यहाँ पर गड़वा दिया था ।"

"प्रभु ! यह मेरा अहोभाग्य है !" यह कहकर रमेश ने वह धन ले लिया ।

"तुम भले आदमी हो और विश्वासपात्र भी हो ! मैं तुम्हें अपने दरबार में कोई अच्छी नौकरी दे दूँगा जिससे तुम्हें जिन्दगी भर दुखी होने की आवश्यकता न पड़ेगी । मैं चाहता हूँ कि तुम सदा प्रसन्न रहो," राजा ने कहा ।

"आपकी बड़ी कृपा है ! आपने मुझे बड़ी खुशी दी है," रमेश ने कहा ।

ये शब्द रमेश ने तो कह दिये पर उसके चेहरे पर कहीं प्रसन्नता के लक्षण दिखाई नहीं दिये बल्कि अपार दुख उमड़ते राजा ने देखा । राजा ने चकित होकर कहा, "ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारी चिन्ता अभी तक दूर नहीं हुई है ।"

"अब चिन्ता काहे की, प्रभु !" यह कहकर रमेश और उदास होते हुए बोला, "महाराज, मैं समझता हूँ कि इस जिन्दगी में मुझे अपना खोया हुआ सिक्का प्राप्त होने का प्रारब्ध नहीं है । यदि मैं इसी गाँव में रहूँगा तो प्रतिदिन मैं तालाब की मेड़ पर उसकी खोज किया करूँगा ।"

रमेश की बात सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसे आजतक ऐसा अजीबो-ग़रीब व हठी व्यक्ति नहीं मिला था । उसने सोचा कि रमेश की चिन्ता को दूर करना उसके लिए सम्भव नहीं है । यह गुण उसके जन्म के साथ ही उसके अन्दर समाया हुआ है । किसी भी व्यक्ति के लिए रमेश की अजीब चिन्ता को दूर करना सम्भव न हो सकेगा । इस प्रकार सोचकर रमेश को अपने साथ राजधानी में ले जाने का विचार राजा ने त्याग दिया ।
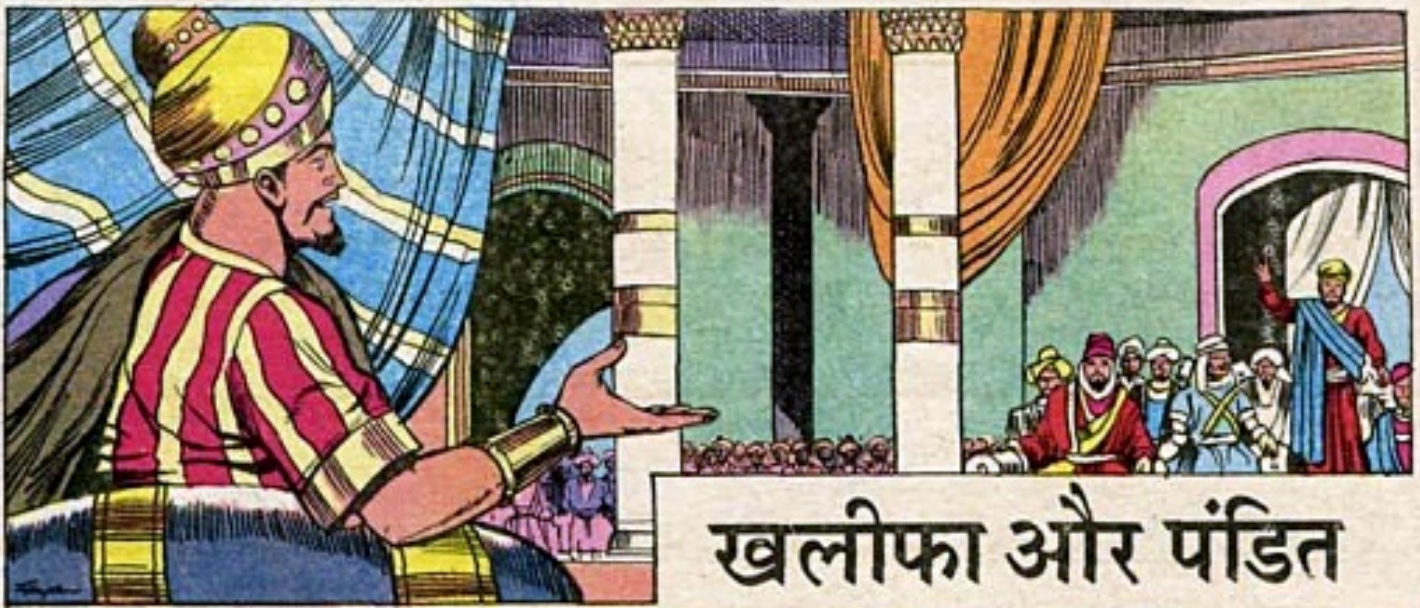
खलीफा और पंडित

बगदाद नगर पर जिन खलीफाओं ने राज्य किया, उनमें अलममून कवि और पंडितों के बड़े आश्रयदाता के रुप में प्रसिद्ध हुए। वे योग्य विद्वानों को उपाधियाँ एवं पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया करते थे।

खलीफा अलममून सप्ताह में एक बार सभा बुलाते थे। उसमें पंडित और कवि ही नहीं बल्कि विवेकशील और वाकचतुर व्यक्ति भी भाग लेते थे। उन सभाओं में अनेक विषयों पर चर्चाएँ हुआ करती थीं। उन चर्चाओं में उदीयमान पंडितों को भी मौका दिया जाता था। सभा में उपस्थित साधारण जनता को उन चर्चाओं के द्वारा कई विषयों की जानकारी प्राप्त करने का मौका मिलता था।

एक दिन खलीफा पंडितों की सभा का आरम्भ कर रहे थे। उस समय कोई एक नया आदमी आ पहुँचा। वह चर्चाएँ सुनने के लिए उपस्थित साधारण प्रजा के बीच न बैठ कर सीधे पंडितों के बीच जाकर बैठ गया। दर्शकों को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह कोई पंडित नहीं, बल्कि कोई यात्री होगा। यात्री होने के कारण उसे इन सभाओं की रीत नहीं मालूम होगी।

सभा का शुभारंभ हुआ। खलीफा ने उस दिन चर्चा के लिए जो विषय निर्धारित किया था, उस पर एक-एक करके विद्वान सरल भाषा में जनता की समझ में आने लायक शैली में भाषण देने लगे। नया आगंतुक व्यक्ति पंडितों के बीच बैठा हुआ था, इसलिए थोड़ी देर बाद उस की बारी आ गई। वह उठ खड़ा हुआ और उसने चर्चित विषय पर अपने विचार सुमधुर शैली और विशुद्ध भाषा में व्यक्त किये। उसे सुनकर सभी लोग आश्चर्य में आ गए। आगंतुक का भाषण ज्ञान-वर्द्धक था। ऐसा पहले कभी किसी ने नहीं सुना था।

इस पर खलीफा ने उससे पंडितों की प्रथम पंक्ति में बैठने के लिए कहा। खलीफा के

अनुरोध पर नया व्यक्ति प्रथम पंक्ति में आकर बैठ गया ।

इसके बाद खलीफा ने दूसरे विषय पर चर्चा करने का आदेश दिया । उस चर्चा में नये व्यक्ति ने पहले से कहीं अधिक आकर्षक शैली में भाषण देकर सबको चकित कर दिया । पंडितों के साथ अन्य सभासदों ने भी मुग्ध होकर हर्ष ध्वनि की । इस बार खलीफा ने उससे मंत्रियों के बीच बैठने का आग्रह किया ।

इसके अनन्तर एक और विषय पर चर्चा शुरु हुई । इस चर्चा में नये आगंतुक ने अपनी दुनियादारी के ज्ञान, वाचातुरी तथा विवेकशील-ता से सभा को मंत्र मुग्ध कर दिया । इस पर खलीफा ने उसे अपने पार्श्व में एक आसन पर बैठने को निमंत्रित किया । सब लोगों को प्रसन्नता भी हुई और आश्चर्य भी । राजसभा में आजतक इस प्रकार की घटना नहीं हुई थी । आज एक अजनबी ने राजा एवं सभासदों का हृदय जीत लिया था । ऐसा उसके अपार ज्ञान के कारण ही सम्भव हुआ था ।

सभा समाप्त हुई । खलीफा ने सभी पंडितों के लिए दावत का प्रबन्ध किया । दावत के समाप्त होने के बाद एक-एक करके सब वहाँ से जाने लगे । नया व्यक्ति भी जाने लगा । तब खलीफा ने उसके कन्धे पर थपकी देकर कहा, "मैं आपको विशेष प्रकार से आतिथ्य देना चाहता हूँ । हम दोनों अंगूर की शराब का सेवन करेंगे ।"

खलीफा का आदेश पाकर अंतःपुर की दासियाँ रत्न खचित दो स्वर्ण पात्रों में अंगूर की
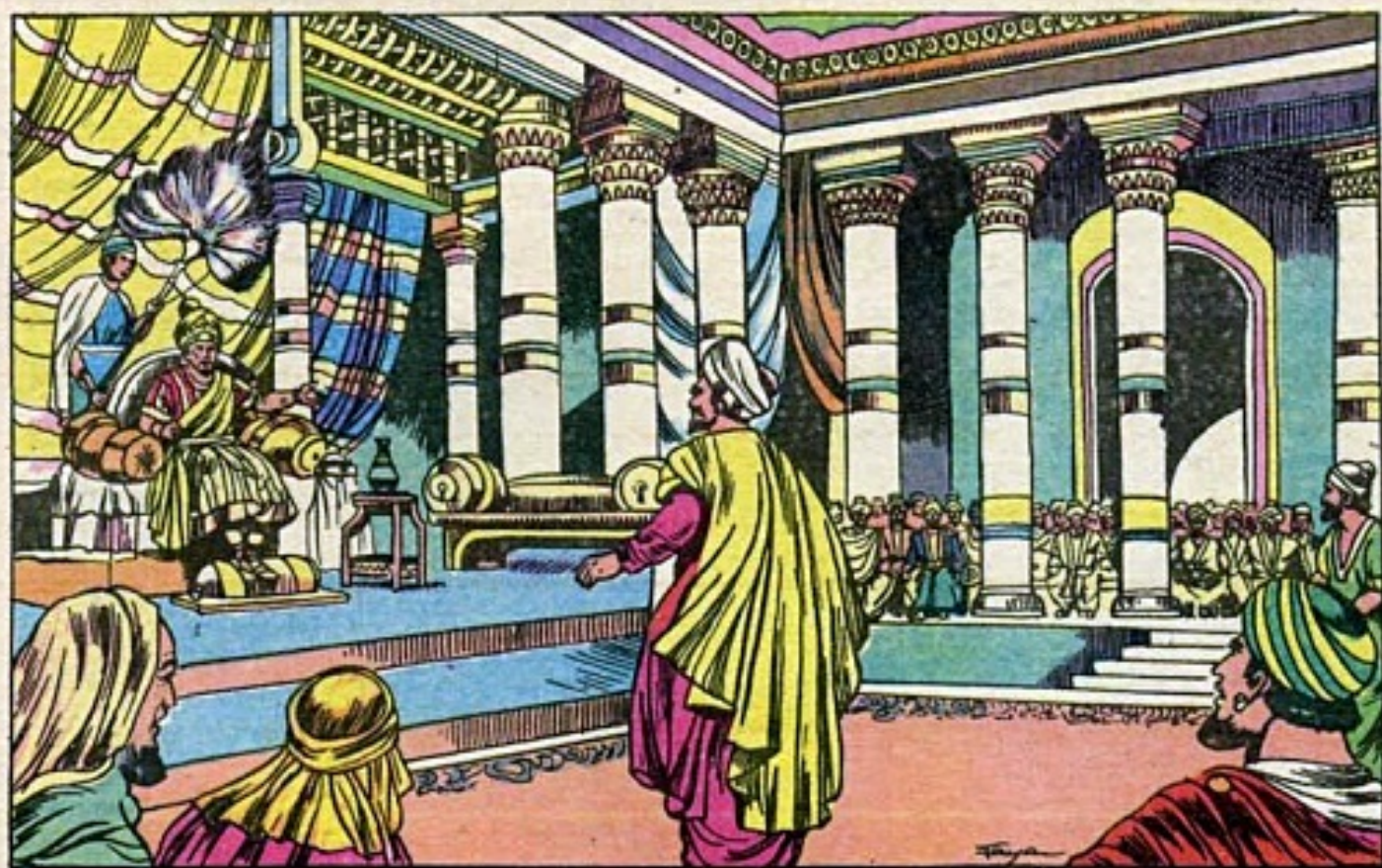
शराब भरकर ले आई। राजा के इशारे पर संगीतज्ञों ने वातावरण में अपनी स्वर-लहरी से चार चाँद लगा दिये। खलीफा ने एक पात्र अपने हाथ में लिया और दूसरा पात्र लेने के लिए नये व्यक्ति को इशारा किया।

नये व्यक्ति को इस नये वातावरण में बड़ी हिचकिचाहट हो रही थी। हिम्मत बाँधकर उसने विनयपूर्वक खलीफा से पूछा, "प्रभु ! कृपया यह बताइए कि आपने मुझे प्रमुख पंडितों की पंक्ति में बैठने का आदेश क्यों दिया ?"

"तुम्हारे विवेक और वाकचतुरी ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया, इसलिए मैंने वह स्थान तुम्हारे योग्य समझा," खलीफा ने जवाब दिया।

"इस के बाद आपने मुझे अपने पार्श्व के आसन पर बैठने का क्यों आग्रह किया ?" नये व्यक्ति ने पूछा।

"तुम्हारे विवेक और वाकचातुरी ने मुझे अत्यन्त मुग्ध कर दिया," खलीफा ने पुनः वे ही शब्द दुहराये।

"इस का अर्थ है कि मैं अपने विवेक और वाकचातुरी के कारण ही आप की कृपा का पात्र बन गया हूँ न ?" नये व्यक्ति ने कहा।

"तुम्हारे बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं," खलीफा ने कहा।

"तब तो आप मुझे उन गुणों से क्यों दूर करना चाहते हैं ?" नये व्यक्ति ने पूछा।

"तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं," खलीफा ने फिर अपनी बात दुहराई।

"प्रभु ! आप इस समय जो शराब देना चाहते हैं, वह मेरे भीतर उन दोनों गुणों को नष्ट करने वाली है। उनकी रक्षा करने की जिम्मेदारी मुझ पर है। इसलिए कृपया इस शराब का सेवन किये बिना मुझे यहाँ से चले जाने की अनुमति दीजिए," नये व्यक्ति ने निवेदन किया।

यह उत्तर सुनकर खलीफा बहुत खुश हुए। उन्होंने उसी क्षण उस नये पंडित को एक लाख चांदी के सिक्के, कीमती पोशाकें तथा उत्तम घोड़ा पुरस्कार में दिया।

इस के बाद पंडितों की जो जो सभाएँ हुई, उनमें इस नये पंडित को प्रमुख स्थान देकर उसका आदर किया।

विष्णु पुराण

कपिलवस्तु नगर को पार कर बहुत दूर जाने के बाद सिद्धार्थ ने अपने उत्तरीय, तलवार तथा आभूषण सारथी चेन्ना को देकर कहा, "चेन्ना, तुम मेरे पिताजी को मेरा प्रणाम पहुँचा देना। उन्हें यह भी बता देना-सिद्धार्थ ने विशाल विश्व में कदम रखा है; प्राणीमात्र को पीड़ाओं को दूर करने वाले धर्मचक्र-संचालक चक्रवर्ती के रुप में कपिलवस्तु नगर को लौट आएगा। वे अपने पुत्र सिद्धार्थ को अपना नाम सार्थक बनाने वाली सिद्धि-प्राप्ति का आर्शीवाद दें।"

चेन्ना के मुँह से कोई बात न निकली। उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। इस पर सिद्धार्थ ने द्रवित होकर कहा, "चेन्ना, मातृ-प्रेम से वंचित मुझे बचपन में गोद में लेकर खिलाते मेरी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करते हुए तुमने माता के समान मेरे साथ वात्सल्यपूर्ण व्यवहार किया है। मैं तुम्हारे ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकता। मानव का जन्म लेकर व्यथाओं का अनुभव करने वाले मुझ जैसे व्यक्ति को इस अर्द्धरात्रि के समय तुमने इस नगर को पार कराया। तुम्हारे इस उपकार को मैं कभी नहीं भूल सकता। यद्धि मुझे सिद्धि प्राप्त हो गई तो इस प्रयत्न में सहयोग देने वाले प्रथम व्यक्ति तुम ही होगे। अब तुम घर लौट जाओ।" यह कहकर सिद्धार्थ ने उसके कंधे पर थपकी देकर वापस भेज दिया।

चेन्ना देर तक वहाँ से हिल नहीं पाया। उसका मन दुख से भर उठा था। जिस राजकुमार को उसने बचपन से लेकर यौवन की सीढ़ी पर आगे बढ़ते हुए पल-पल देखा था,

वही आज सब कुछ त्याग कर जा रहा था। पर वह कर भी क्या सकता था ! कुछ देर वहीं खड़ा रहा, फिर भारी कदमों के साथ रथ के समीप पहुँचा ।

सिद्धार्थ ने अपने महाप्रस्थान की ओर कदम बढ़ाया । भोर का तारा उदित हुआ । सूर्योदय होने वाला था ।

चेन्ना ने दुखी मन से महाराज शुद्धोदन को सिद्धार्थ का समाचार सुनाया। इसपर वे अत्यन्त व्याकुल हो बेहोश हो गये ।

यशोधरा अपने पुत्र राहुल को वक्ष से लगाकर कहने लगी, "बेटा, तुम भी अपने पितःश्री को रोक न पाये !" यह कहकर वह फूट-फूट कर रो पड़ी । काफ़ी देर बाद अपने दुख पर नियंत्रण करके अपने पतिदेव के मुखमंडल पर अंकित महापुरुष के लक्षणों का स्मरण करती हुई गंभीर हृदय के साथ उठ खड़ी हुई और अपनी परिचर्या से अपने श्वसुर को होश में लाई ।

"महाराज, आप अपने पुत्र को एक साधारण मानव न मानें । उनको शाक्यवंश को पुनीत करने वाला समझना होगा । आप जिस प्रकार कपिलवस्तु राज्य की जनता का हित एवं कल्याण चाहते हैं, उसी प्रकार इस विशाल विश्व के सभी जन उनकी प्रजा हैं । उन्हीं का उद्धार करने के लिए उन्होंने सिद्धार्थ गौतम के रुप में अवतार लिया है और उन्हीं के कल्याण के हेतु राजमहल को छोड़कर चले गये हैं," यशोधरा ने अपने श्वसुर को समझाया ।

शुद्धोदन ने यशोधरा के मुँह से इस सत्य को जानने के बाद अपने दुख पर नियंत्रण कर लिया और वे परमानन्दित हुए ।

इसके बाद यशोधरा राहुल को उनके हाथों में रखते हुए बोली, "तात, यही उनका प्रतिबिम्ब है ।"

शुद्धोदन ने अपने पौत्र को देखते हुए पुत्र का स्मरण किया । लगभग इतनी ही छोटी आयु में सिद्धार्थ को उनके हाथों में समर्पित कर उसकी माँ महामाया अपनी इहलीला समाप्त कर गई थी ।

यशोधरा ने अपने मन में संकल्प किया कि राहुल को अत्यन्त अनुशासन के साथ

पाल-पोस कर उसको अपने पिता के योग्य पुत्र बनाना उसका कर्त्तव्य है। यह सोचकर उसने तन-मन से राहुल को पालना-पोसना आरम्भ किया।

प्राणी जगत का उद्धार कर सकने वाले सत्य का अन्वेषण करते हुए सिद्धार्थ ने अनेक कष्टों को भोगा और अनेक प्रदेशों का भ्रमण किया। इस प्रयत्न में वे एक बार भूख-प्यास से बेहोश हो गिर पड़े। एक गोपालक ने उनको दूध पिला कर बचाया। उस समय सिद्धार्थ ने स्वयं अनुभव किया कि प्राणों की रक्षा करना कितना आवश्यक है। उन्होंने यह जाना कि अपने समाज के लोगों की सेवा करना और उनकी सहायता करना मानव का धर्म है।

भिक्षु के रूप में देशाटन करते हुए सिद्धार्थ अनेक साधु, सन्यासी, योगी तथा भिन्न-भिन्न मार्गों का अनुसरण करने वालों से मिले और इस प्रकार अपार ज्ञान अर्जित किया। उन लोगों ने सिद्धार्थ के मस्तिष्क में यह बात बिठाई कि तपस्या के द्वारा समस्त लक्ष्यों की सिद्ध प्राप्त हो सकती है।

सिद्धार्थ कठोर तपस्या में लीन हो गये। उस समय सुजाता नामक गोपकुल की एक गर्भवती युवती ने यह मनौती की कि यदि उसके पुत्र होगा तो वह पुनः उनके दर्शन करेगी। उसकी मनोकामना की पूर्ति हुई। इस पर सुजाता अपनी मनौती पूरी करने के लिए अपनी गोद में शिशु को और हाथों में फल तथा खीर लेकर चल पड़ी।

उस समय सिद्धार्थ क्षीणकाय हो अस्थि-प ंजर मात्र बन कर रह गये थे। ऐसी स्थिति में सुजाता के हाथों से खीर ग्रहण कर वे अपने प्राण बचा सके।

सुजाता ने सिद्धार्थ को प्रणाम किया और बोली, "आपकी कृपा से मुझे पुत्र की प्राप्ती हुई है।" यह कहकर सिद्धार्थ के रोकते रहने पर भी अपने शिशु से सिद्धार्थ के चरण-स्पर्श कराये।

इस पर सिद्धार्थ बोले, "माँ, जैसा तुम समझती हो, मैं वैसा महिमान्वित व्यक्ति नहीं हूँ। चाहे तुमने किसी भी भाव से प्रेरित होकर मुझे खीर खिलाई हो पर मैं तुम्हें एक दयारुपिनी के रुप में समझता हूँ। तुम्हारे आचरण से मैंने दया की भावना को हृदयंगम किया है। जैसे

तपस्या अभी तक पूर्ण नहीं हुई है। मैं भी तुम लोगों के जैसे ही एक साधारण मानव हूँ। मानव-मानव में भेद मानना अनुचित है। यह मानने की कोई आवश्यकता नहीं है कि कोई बड़ा है और कोई छोटा है। जैसे समस्त जीवों के अन्दर प्राण है, उसी प्रकार सारी मानवता भी एक है। मैं जब अपनी तपस्या में सफल हो जाऊँगा और तुम्हारे पुत्र को आर्शीवाद देने की अर्हता प्राप्त कर लूँगा, उस दिन मैं अवश्य तुम्हारे घर अतिथि बन कर आऊँगा," सिद्धार्थ ने आश्वासन दिया।

"स्वामी आपको अवश्य आना होगा।" यह कहकर सुजाता ने उनको प्रणाम किया और अपने पुत्र की देह को उनके चरणों का स्पर्श कराकर वहाँ से चल पड़ी।

धीरे-धीरे तपस्या के प्रति सिद्धार्थ का विश्वास जाता रहा। तपस्या करने वाले सभी लोगों के अन्दर उन्हें उनका लक्ष्य स्वार्थ ही दिखाई दिया, पर मानव मात्र के प्रति प्रेम या सहयोग की भावना दिखाई नहीं दी। तपस्या आदि शरीर को कष्ट देने वाले आत्म-हत्या सदृश्य उन्हें प्रतीत हुए। इसलिए सिद्धार्थ ने उन की आवश्यकता नहीं समझी। तपस्या के प्रति उनकी विमुखता का उनके साथ साधन करने वालों ने हँसी उड़ाई और कहा कि गौतम तपस्या भ्रष्ट हो गया है।

कुछ तपस्वी व साधक अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त करके इन्द्रजाल विद्या से जनता को अपनी ओर

तुमने मेरे प्राणों की रक्षा की, वैसे ही प्रकृति सदा समस्त प्राणियों की रक्षा अपनी शीतल कृपादृष्टि द्वारा करती रहती है। तुम उस प्रकृति के समान माता हो।"

"भगवन, आप अपने महत्व को प्रकट करने की इच्छा नहीं रखते इसीलिए ऐसे वचन कह रहे हैं, परन्तु मैं अच्छी प्रकार जानती हूँ कि आप सचमुच महिमान्वित महापुरुष हैं। मैं तो गोपकुल की हूँ पर आप महान वंश के हैं। मेरी इच्छा तो यह है कि आप मेरे घर पधार कर हमारा आतिथ्य स्वीकार करें और हमारे पुत्र को आर्शीवाद दें। पर मैं तो एक सामान्य गृहिणी हूँ!" सुजाता बोली।

"माँ, मैं सच्ची बात बताता हूँ — मेरी

आकृष्ट करते हुए उनके गुरु बन गये। उन को बराबर अपने यहाँ आने का अवसर देकर स्वयं फूले न समा रहे थे। पर वास्तव में मानव के कल्याण में वे किसी भी प्रकार से सहायक सिद्ध नहीं हो रहे थे और न ही वे प्रकृति के धर्मों को बदल पा रहे थे। अज्ञान और अन्ध-विश्वासों की चपेट में आई हुई आम जनता कैसे बदल सकती थी !

राजाओं को प्रलोभन देकर यज्ञ-यागादि के बहाने मांसाहारीं बनकर अग्र श्रेणी के लोग समाज को और अधिक पतन के गड्ढे में ढकेल रहे थे।

इस प्रकार तर्क-वितर्कों से दूर अपने कर्त्तव्य-धर्म पर विचार करते हुए सिद्धार्थ गया क्षेत्र के एक विशाल पीपल वृक्ष के नीचे बैठ कर अन्तर्मुखी हो गये। एक दिन उन्हें अचानक ज्ञानोदय हुआ।

वह वैशाख पूर्णिमा का दिन था। पूर्ण चन्द्रमा अपनी पूरी कलाओं के साथ चमक रहा था। उसी समय गौतम को बुद्धत्व की सिद्धि हुई। वे परिपूर्ण बुद्ध मूर्ति के रुप में मानसिक विकास को प्राप्त हुए।

सिद्धार्थ गौतम को जब ज्ञानोदय हुआ, समय उन्होंने एक अनिवर्चनीय अनुभूति का अनुभव किया। उस ध्यानमग्न अवस्था को ही उन्होंने निर्वाण माना।

उस दिन से वैशाख पूर्णिमा बुद्ध पूर्णिमा के नाम से लोकप्रिय हुई। पीपल का वृक्ष बोधिवृक्ष के रुप में पूजा जाने लगा। बुद्ध बोधिसत्व के रुप में पुकारे जाने लगे।
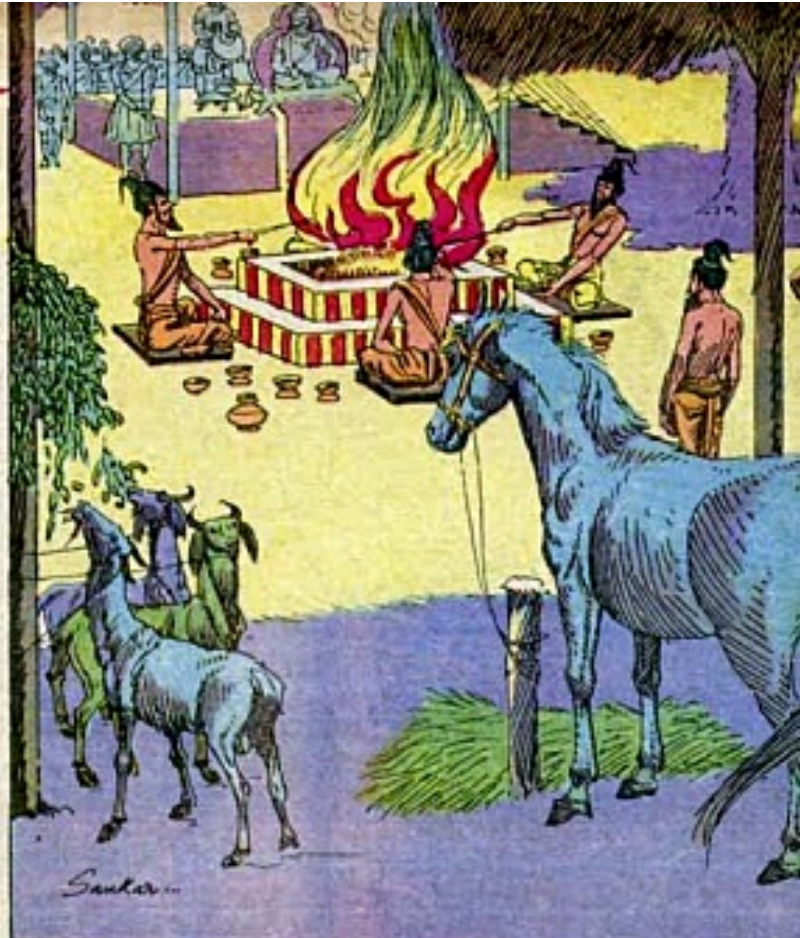
प्राणि जगत में मानव अपनी बुद्धि विशेषता के कारण ही श्रेष्ठ माना जाता है। बुद्धि-विकास के द्वारा ही मानव न केवल अपना उद्धार वरन् अन्य लोगों का उद्धार भी कर सकता है। अहिंसा के द्वारा ही मानव एक सच्चा मानव बनकर बुद्ध हो जाता है। कामनाओं पर नियंत्रण करके, राग-द्वेषों से दूर हो, सुख-दुःख से अलग हटकर निर्वाण के द्वारा बुद्धत्व को प्राप्त हो जाता है। जैसे एक ज्योति अनेक ज्योतियों को प्रज्वलित कर सकती है, उसी प्रकार एक व्यक्ति यदि अनेक व्यक्तियों में बुद्धत्व पैदा करे तो यह जगत अन्धकार से निकलकर प्रकाश की
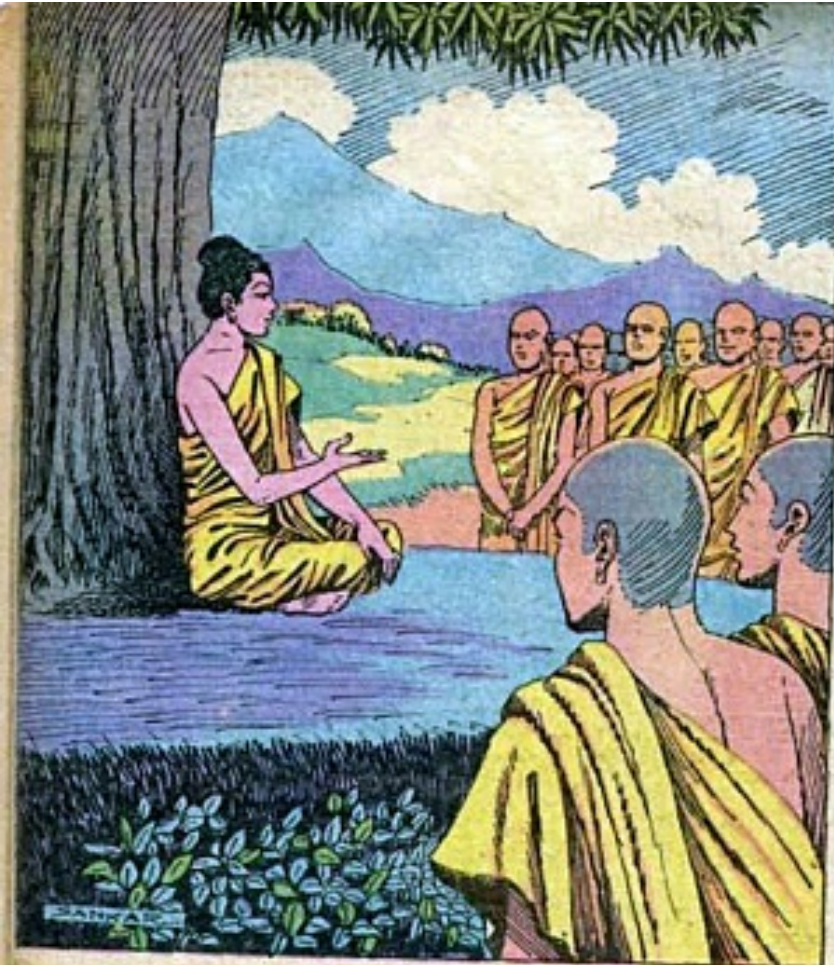
ओर अग्रसर होगा। बुद्ध ही जगत की ज्योति है।

गौतम बुद्ध ने जिन सत्यों को जाना उनका प्रचार करना आरम्भ किया। पहले जिन लोगों ने उनका परिहास किया था, वे सब से पहले उनके अनुयायी बन गये।

ऐसा कोई धर्म नहीं है, जिसका प्रबोध बुद्ध ने न किया हो। साधारण जनता की समझ में आने योग्य धर्म तथा उत्तम जीवन के सूत्रों का उन्होंने प्रचार किया।

बुद्ध के बोध के सत्यों को पहचान कर हज़ारों लोग उनके शिष्य बन गए।

अहिंसा को परम धर्म के रुप में प्रचार करते हुए बुद्ध सारे देश का भ्रमण करने लगे। उस संदर्भ में मगध के चक्रवर्ती बिम्बिसार बुद्ध के उद्बोधन से प्रेरित हो उठे और हज़ारों प्राणियों की बलि देने वाले अपने यज्ञ को रोक दिया। अपने मुकुट को बुद्ध के चरणों पर रखा और अपनी प्रजा के लिए बुद्ध-धर्म को शिरोधार्य किया।

बुद्ध के उपदेश, सिद्धांत, सूत्र आदि बौद्ध-धर्म के रुप में विख्यात हुए। बौद्ध धर्मावलंबी बौद्ध कहलाये।

अज्ञान के अन्धकार में निमग्न जगत को मार्ग-दर्शन करने वाली ज्योति के रुप में बुद्ध प्रकाशमान हुए। अहिंसा की ज्योति के रुप में धर्म-चक्र का संचालन करते हुए धर्म चक्रवर्ती कहलाये।

बुद्ध ने अपने समय के अनेक राज्यों में जाकर बौद्ध संघ स्थापित किये और सेवा-धर्म को प्रतिस्थापित किया। समस्त बौद्ध सन्यासी समाज-सेवक बनकर जन साधारण के जीवन में सुधार लाये।

बुद्ध के देशाटन के समय अनेक महाराजाओं ने उनके धार्मिक आधिपत्य को स्वीकार किया। चक्रवर्तियों ने अपने मुकुटों को उनके चरणों पर रख दिया, बुद्ध की चक्रवर्तियों के चक्रवर्ती के रुप में स्तुति करते हुए उनके आदेशानुसार जनता पर शासन किया और राज्य-पालन में अहिंसा एवं दया का अवलम्बन किया। जाति-भेद को न मानने वाले बौद्ध-धर्म को सभी राज्यों के अनेक लोगों ने स्वीकार किया।
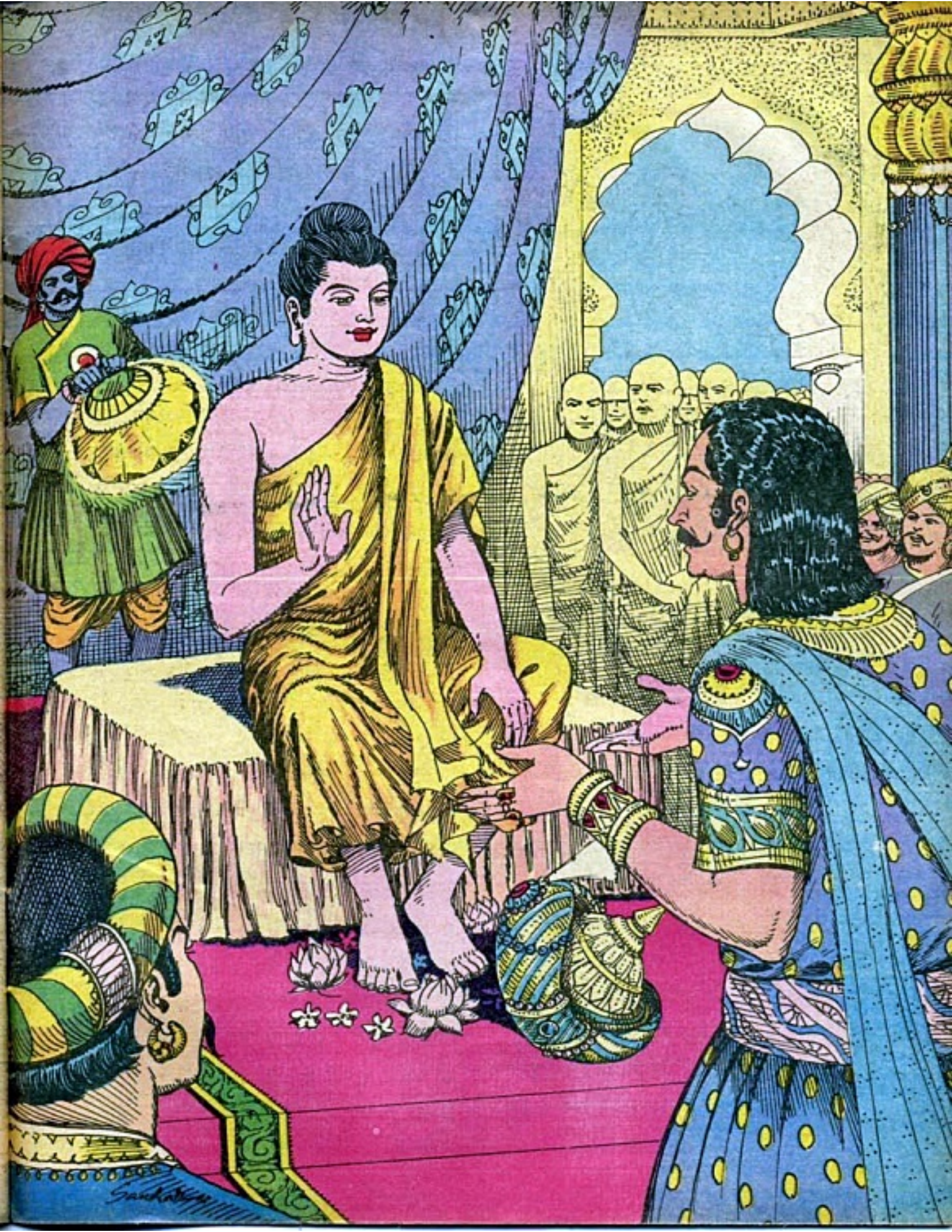
उनके जीवन-काल में ही पंडित, पामर, ज्ञानी, राजा व चक्रवर्ती भी बुद्ध को भगवान का अवतार मानने लगे। पर बुद्ध ने किसी प्रकार की आराधना को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इस बात पर ज़ोर देकर कहा कि भक्ति व आराधना से परे सत्कर्मों के द्वारा ही मानव निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।

छः वर्ष पश्चात बुद्ध कपिलवस्तु नगर के लिए चल पड़े।

बुद्ध देव के आगमन का समाचार कपिलवस्तु में फैल गया। जनता आनन्द एवं उत्साह से फूली न समाई। उनके स्वागत की भारी तैयारियाँ की गईं। उनकी आरती उतारने के लिए लोग बड़े ही आतुर थे।

शुद्धोदन यह सोच कर प्रसन्न थे कि राजकुमार सिद्धार्थ लौट रहे हैं।

"माँ, सुनते हैं कि पिताजी पधार रहे हैं ?" राहुल ने उत्साह में आकर यशोधरा से पूछा। राहुल अब दो वर्ष पूरे कर चुका था।

"हाँ बेटा, तुम्हारे पिता एक भिक्षुक बन कर यहाँ आ रहे हैं। उस चक्रवर्ती को हमें भिक्षा देनी है," यशोधरा ने कहा।

"क्या कहा ? क्या पिताजी चक्रवर्ती हैं ?" राहुल ने पूछा। "हाँ बेटा ! वे इस विश्व के लिए चक्रवर्ती हैं," यशोधरा ने कहा।

"यह सर्वस्व उन्हीं का है न ?" राहुल बोला।

"तुम्हारे पिता ये सब नहीं चाहते थे, इस वैभव में उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी, इसलिए इनको त्याग कर चले गये हैं। अब उनके आदेशानुसार चलना ही उन के लिए सही भिक्षा है," यशोधरा ने कहा।

"माँ, हम ऐसा ही करेंगे। मैं पिताजी के आदेश का पालन करूँगा। उन का अनुसरण करूँगा"। राहुल के ऐसा कहने पर यशोधरा मातृप्रेम से ओतप्रोत होकर आनन्दाश्रु बहाने लगी और उसे अपनी बाहुओं में बांध लिया। उसका पुत्र अपने पिता के मार्ग को उचित समझकर उनका अनुसरण करने की इच्छा करे, इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात यशोधरा के लिए और क्या हो सकती थी !

वाली थी। उस दिन शाम को राजकुमारी एक चांदी के थाल में दो तलवारें रख कर अपने पिता के पास पहुँची और बोली, "पिताजी, आप इन दोनों में से अपनी पसन्द की तलवार ले लीजिए।"

उनमें से एक तलवार की मूठ रत्न जड़ित थी और उसकी म्यान सोने से निर्मित थी। दूसरी तलवार की मूठ साधारण थी और वह एक चमड़े के म्यान में रखी हुई थी।

राजा ने दोनों तलवारों की जांच की, और चमड़े में बंद तलवार को दिखाकर बोले, "मुझको यही तलवार पसन्द है।"

"पिताजी, सोने के म्यान में बन्द रत्न जड़ित मूठ वाली तलवार आप को क्यों पसन्द नहीं आई?" राजकुमारी ने पूछा।

"एक वीर के लिए तलवार की धार से मतलब होता है, उसकी दृष्टि में उसके म्यान का अधिक महत्व नहीं होता। असली बात यह है कि चमड़े में बन्द तलवार की धार ज्यादा पैनी है। इसलिए यह मुझ को अधिक पसन्द आई।"

"पिताजी, मनुष्य का सौन्दर्य, वैभव-संपत्ति, अधिकार, ये सब तलवार के ऊपर सोने की म्यान जैसे हैं। आज प्रातः काल स्वयंवर मण्डप में रुप, संपदा, अधिकार और वैभव रखने वाले सभी राजकुमार हठात् विपदा के उपस्थित होते ही घबरा कर भाग गये, पर वीरसेन ने अपने प्राणों की परवाह किये बिना आगे बढ़ कर हम लोगों की रक्षा की है। युद्ध में वीर के लिए तलवार जैसे महत्व रखती है, उसी प्रकार जीवन में एक स्त्री के लिए साहस, वीरता और त्याग रखने वाले पुरुष का पति के रुप में प्राप्त होना भाग्य की बात मानी जाएगी। ऐसे अनुपम वीर वीरसेन जब हमारे दरबार में ही हैं, ऐसी हालत में स्वयंवर रचने की क्या आवश्यकता है?" राजकुमारी मंद-मंद मुस्कुराते हुए बोली।

अपनी बेटी के मन की भावना को ताड़ कर राजा गजवर्मा ने प्रसन्न होकर उसको आशीर्वाद दिया और वीरसेन के साथ उसका विवाह वैभवपूर्ण संपन्न किया।

तलवार और म्यान

कलावती गजपुरी के राजा गजवर्मा की इकलौती पुत्री थी। उसके युक्त वयस्का होते ही राजा गजवर्मा ने स्वयंवर की घोषणा की।

उस स्वयंवर में विविध राज्यों के राजकुमार आये। हाथों में फूलों की माला लिए हुए, राजकुमारी स्वयंवर मण्डप में पहुँची।

उस समय सभा मण्डप के सामने खंभों से बंधा हुआ हाथी अचानक चिंघाड़ते हुए जंजीर तोड़ कर मण्डप के अन्दर दौड़ आया।

मण्डप में हलचल मच गई। सब राजकुमार घबरा गये और इधर-उधर भाग खड़े हुए।

उस वक्त वहाँ पर उपस्थित एक युवक सिंह-शावक की भांति आगे कूद पड़ा और हाथी के कुंभस्थल पर अपनी मुट्ठी से प्रहार करने लगा। हाथी ने उस युवक के सामने झुक कर सर नवाया।

उस युवक के साहस और पराक्रम पर राजा बहुत प्रसन्न हुए। पता लगाने पर राजा को मालूम हुआ कि वह युवक राजा के प्रधान अन्तरंग सलाहकार धीर वर्मा का पुत्र वीर सेन है।

राजकुमारी कलावती अपने कंठ से मोतियों की माला निकाल कर वीरसेन की ओर बढ़ाते बढ़ाते हुए बोली, "तुमने अपने प्राणों का मोह त्याग कर हमारे प्राणों की रक्षा की। मेरी ओर से यह पुरस्कार ले लो।" पर युवक ने उस हार को लेने से इनकार कर दिया और बोला, "मुझे पुरस्कार किसलिए ? मैंने अपना कर्त्तव्य किया है, बस, इससे बढ़कर कोई महानकार्य नहीं किया है।"

स्वयंवर रुक गया। राजकुमारी को इस तरह से स्वयंवर रुक जाने से किसी तरह की उदासी का अहसास नहीं हुआ। मगर उसे यह मालूम पड़ गया था कि यहाँ पर आये हुए राजकुमार डरपोक थे और वह उनमें से एक की वधु बनने

संदीप गुप्ता

वाली थी। उस दिन शाम को राजकुमारी एक चांदी के थाल में दो तलवारें रख कर अपने पिता के पास पहुँची और बोली, "पिताजी, आप इन दोनों में से अपनी पसन्द की तलवार ले लीजिए।"

उनमें से एक तलवार की मूठ रत्न जड़ित थी और उसकी म्यान सोने से निर्मित थी। दूसरी तलवार की मूठ साधारण थी और वह एक चमड़े के म्यान में रखी हुई थी।

राजा ने दोनों तलवारों की जांच की, और चमड़े में बंद तलवार को दि[illegible]कर बोले, "मुझको यही तलवार पसन्द है।"

"पिताजी, सोने के म्यान में बन्द रत्न जड़ित मूठ वाली तलवार आप को क्यों पसन्द नहीं आई?" राजकुमारी ने पूछा।

"एक वीर के लिए तलवार की धार से मतलब होता है, उसकी दृष्टि में उसके म्यान का अधिक महत्व नहीं होता। असली बात यह है कि चमड़े में बन्द तलवार की धार ज्यादा पैनी है। इसलिए यह मुझ को अधिक पसन्द आई।"

"पिताजी, मनुष्य का सौन्दर्य, वैभव-संपत्ति, अधिकार, ये सब तलवार के ऊपर सोने की म्यान जैसे हैं। आज प्रातः काल स्वयंवर मण्डप में रुप, संपदा, अधिकार और वैभव रखने वाले सभी राजकुमार हठात् विपदा के उपस्थित होते ही घबरा कर भाग गये, पर वीरसेन ने अपने प्राणों की परवाह किये बिना आगे बढ़ कर हम लोगों की रक्षा की है। युद्ध में वीर के लिए तलवार जैसे महत्व रखती है, उसी प्रकार जीवन में एक स्त्री के लिए साहस, वीरता और त्याग रखने वाले पुरुष का पति के रुप में प्राप्त होना भाग्य की बात मानी जाएगी। ऐसे अनुपम वीर वीरसेन जब हमारे दरबार में ही हैं, ऐसी हालत में स्वयंवर रचने की क्या आवश्यकता है?" राजकुमारी मंद-मंद मुस्कुराते हुए बोली।

अपनी बेटी के मन की भावना को ताड़ कर राजा गजवर्मा ने प्रसन्न होकर उसको आशीर्वाद दिया और वीरसेन के साथ उसका विवाह वैभवपूर्ण संपन्न किया।

न्याय-पीठ

कुन्दनपुर के शासक चन्दन का उद्देश्य था कि सौ प्रतिशत न्याय होना चाहिए पर साधारणतः यह संभव नहीं क्योंकि न्याय करने वाले मानव मात्र हैं। उनके द्वारा भूल हो जाने की संभावना हमेशा बनी रहती है। इसलिए कभी न कभी न्याय में भूल हो ही जाती है।

इस प्रकार की त्रुटि से बचने के लिए राजा चन्दन ने जंगल में जाकर धर्म देवी की अनेक वर्षों तक घोर तपस्या की।

धर्म देवी उनकी तपस्या पर प्रसन्न हो गयी और राजा से वर मांगने को कहा। इस पर राजा ने धर्म देवी से वर मांगा, "देवी, मुझे एक ऐसा न्यायपीठ प्रदान कीजिए जिस पर खड़े होकर अगर कोई झूठ बोले तो उस की आकृति विकृत हो जाए।"

धर्मदेवी राजा को उस प्रकार का न्यायपीठ देकर अदृश्य हो गई। राजा उसे वाद्य-वृन्दों के साथ राजधानी में ले आये, राजसभा में प्रतिस्थापित किया और सब को उसकी महिमा का परिचय कराया।

पर कुछ लोगों के मन में न्यायपीठ की महिमा के प्रति विश्वास न था। ऐसे व्यक्ति उस पीठ पर चढ़ कर झूठ बोले और विकृत आकृति को प्राप्त हुए। तब जाकर सब के मन में उस पीठ की महिमा के प्रति विश्वास जम गया।

राजा और प्रजा दोनों प्रसन्न थे। कुन्दनपुर और राजा चन्दन की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। सभी राज्यों के शासक वैसे ही न्याय-पीठ को पाने की इच्छा करने लगे

जनता की दृष्टि में राजा का मान बढ़ा। न्याय की स्थापना में वे न्याय देवता कहलाये। इस पर उन्हें अत्यन्त आत्मसंतोष हुआ।

"मैं इस समय आँखे मूँदकर निश्चिन्त हो न्याय का निर्णय कर सकता हूँ। मेरे पास न्यायपीठ के रहते मेरे शासन में अन्याय हो जाने

पच्चीस वर्ष पूर्व चन्दामामा में प्रकाशित कहानी

की सम्भावना नहीं है," इस प्रकार एक बार राजा ने मंत्री और सामंतों की सभा में डींग मारी।

ये बातें सुनकर मंत्री ठहाके मार कर हँस पड़े और बोले, "महाराज, न्यायपीठ पर अन्ध-विश्वास करना उचित नहीं है। इसे धोखा देकर कोई भी अन्याय कर सकता है।"

राजा का क्रोध भड़क उठा। वे बोले, "इस प्रकार न्यायपीठ की अवहेलना करना अनुचित है। उसे धोखा देकर अन्याय कर सकते है, इस बात को तीन दिन के अन्दर प्रमाणित न कर सके तो मैं आपका सर कटवा दूँगा।"

कुन्दनपुर में हेमकुरंगी नामक एक सुन्दर वेश्या रहती थी। उसे इस बात का अहंकार था कि उस की जैसी रुपवती नारी विश्वभर में कहीं नहीं है। इसी अभिमान के कारण वह सब का अपमान किया करती थी। इसलिए मंत्री ने सोचा कि राजा तथा उस वेश्या को भी उचित सबक सिख़ाना चाहिए।

यह विचार करके मंत्री ने एक योगी का वेश धर कर हेमकुरंगी के मकान के सामने अपना डेरा डाला। उस रास्ते से गुजरने वाले लोगों से धन व सोना लेकर उसके दुगुने उन्हें लौटाकर भेजने लगे। योगी की करनी को देखने के बाद हेमकुरंगी के मन में भी लालच पैदा हुआ, इसलिए वह एक दिन रात के समय योगी के पास पहुँची और अपने सारे सोने व रत्नाभूषण योगी के हाथ सौंप कर उनके दुगुने मूल्य के आभूषण बना कर देने की प्रार्थना की।

योगी ने अगले दिन सवेरे दुगुने आभूषण देने का आश्वासन देकर उसे भेज दिया और वेश्या से प्राप्त सोना व रत्नाभूषणों को अपने दण्ड की पोल में छिपा दिया।

योगी रातों रात कहीं भाग न जाये, इस ख्याल से हेमकुरंगी ने अपने नौकरों को नियुक्त किया और फिर दूसरे दिन सवेरे योगी से मिलकर अपने आभूषणों से दुगुने मूल्य के मांगे।

"तुम्हारी कोई वस्तु मेरे पास नहीं है," योगी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए जवाब दिया।

इसपर हेमकुरंगी के मन में दुख और क्रोध एक साथ उमड़ पड़े। वह सोचने लगी, "उफ़, मैंने इसे एक योगी मानकर सारी संपति सौंप दी

तो यह सबको हड़प लेना चाहता है ।'' फिर उसने राजा से फरियाद करने का निश्चय किया और योगी को राजदरबार चलने को कहा ।

योगी ने कोई आपत्ति नहीं उठाई । उसके साथ राजसभा के लिए चल पड़ा ।

हेमकुरंगी की फरियाद सुनकर राजा ने योगी से कहा कि वह न्यायपीठ पर खड़े होकर जवाब दें ।

योगी ने अपना दण्ड संभालने के लिए उसे हेमकुरंगी के हाथ में दिया । न्यायपीठ पर चढ़ कर योगी बोला, ''इस हेमकुरंगी की संपत्ति मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है ।'' यह कहकर वह न्यायपीठ से उतर आया ।

ऐसे भयंकर झूठ को सुनकर हेमकुरंगी क्रोधावेश आ गई और दण्ड को अपने हाथ में ही लिये न्यायपीठ पर सवार हो कर बोली, ''मैंने अपने सारे सोने व रत्न इस योगी के हाथ सौंप दिये हैं । उन्हें इस दुष्ट ने मुझको नहीं लौटाया है ।'' यों वह ज़ोर से चिल्ला उठी ।

उसकी बात पूरी होने के पहले ही वह विकृत आकृति को प्राप्त हुई । उसे देख सारे सभासद हंस पड़े ।

इसके बाद मंत्री ने अपना वेश बदल कर राजा को सारा हाल सुनाया और कहा, ''महाराज, आपने देखा है न—आपके न्याय-पीठ ने इस हेमकुरंगी के साथ कैसा अन्याय किया है ।''

हेमकुरंगी जान-बूझ कर झूठ नहीं बोली । उसे इस बात का बिल्कुल पता न था कि उसके हाथ में जो दण्ड है, उस के अन्दर उस की संपत्ति है । फिर भी वह कुरुपिनी हो गई ।

इस घटना से राजा के मन में न्यायपीठ के प्रति विरक्ति पैदा हो गई और उसे सभा भवन से हटवा दिया ।

जिस तरह न्याय-पीठ की महिमा चारों तरफ फैली, उसी तरह न्याय-पीठ का अन्याय भी सबने सुना और देखा । मंत्री ने जो कहा था, साबित कर दिखाया । सचमुच मानव मात्र भूल के षुतले है । ऐसी भूल हेमकुरंगी ने की थी न्याय पीठ से साबित तहीं हो सकती थी ।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जनवरी १९८५ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

Subhash Sabnis

A. Govindarajulu

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ नवम्बर १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

सितम्बर के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : **विद्या है अनमोल!**

द्वितीय फोटो : **सदा सत्य बोल!!**

प्रेषक : **ईश्वर चन्द्र सिंह, मकान नं. ३४, प्लाट नं. १, मुगलसराय, जिला - वाराणसी**

क्या आप जानते हैं ? के उत्तर

१. रामेश्वरम का मन्दिर, २. तंजाउर के बृहदीश्वर मन्दिर में, ३. उड़ीसा का कोणार्क मन्दिर। इस मन्दिर का निर्माण समाप्त होते ही धर्मपाद नामक बालक समुद्र में गिर कर प्राणों से हाथ धो बैठा था, ४. कोचिन।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, . Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

जिज्ञासा

प्रश्न — यदि भारत में अँग्रेज़ों का आगमन नहीं होता तो क्या अब तक भारत में आधुनिक सभ्यता का प्रसार हो जाता ?
—नवोदिता शर्मा, पाली

उत्तर — अवश्य हो जाता। सभ्यता का प्रसार किसी के आगमन से नहीं होता, वह तो विकास की प्रक्रिया का परिणाम है। चीन, जापान व रूस इसके उदाहरण हैं।

प्रश्न — राकेश शर्मा के अंतरिक्ष से लौटने पर भारत की जनता को क्या लाभ हुआ ?
—उज्वल कुमार, पटना

उत्तर — अंतरिक्ष में रुचि, वैज्ञानिक खोज की प्रेरणा तथा मौसम-ज्ञान में वृद्धि जैसे कुछ लाभ गिनाए जा सकते हैं।

प्रश्न — रामचंद्र जी ईश्वर हैं तो वे मर्यादा पुरुषोत्तम राम कैसे कहलाये ?
—राकेश कुमार, सीतामढ़ी

उत्तर — ईश्वर ने रामचंद्र नाम से मानव के रूप में अवतार लिया। वे पुरुषों में सबसे उत्तम थे और उन्होंने धर्म एवं सामाजिक मर्यादा को स्थापित करने का प्रयत्न किया, इसलिए उनका यह नाम पड़ा।

प्रश्न — क्या हिन्दी राष्ट्रभाषा बनेगी ? कब तक उम्मीद है ?
—नरेश गमभीर, दिल्ली

उत्तर — हिन्दी तो राष्ट्रभाषा है ही परन्तु कुछ लोगों के संकुचित विचारों के कारण वास्तविक रूप में इसे राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं मिला पा रहा है। आशा है कि तुम्हारी पीढ़ी के लोग शायद इस विषय में कुछ कर सकें !

प्रश्न — एहसानों का बोझ कैसे उतारा जा सकता है ? —नीरज मेहता, इंदौर

उत्तर — एहसान करने वाले के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके तथा उसके लिए कुछ भलाई का काम करके !

प्रेरक सन्देश

"गहरे समुद्र में मोती हैं किन्तु उन्हें पाने के लिए तुम्हें सब प्रकार का जोखिम उठाना होगा। एक बार गोता लगाने मात्र से अगर मोती न मिले तो यह निष्कर्ष न निकालो कि सागर में मोती ही नहीं हैं। बार-बार गोता लगाओ। अन्त में तुम्हें सफलता अवश्य हाथ लगेगी। यही बात संसार में भगवान को पाने की है। यदि तुम्हारी प्रथम चेष्टा विफल हो जाए तो निराश न होओ। अपने प्रयत्न में दृढ़ता से लगे रहो। अन्त में तुम्हें उनके दर्शन होंगे ही।"

—रामकृष्ण परमहंस